श्रीमदभगवदगीता सार

पुनीत बिसारिया

श्रीमदभगवदगीता सार

पुनीत बिसारिया

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

अर्थ:

जब-जब धर्म की हानि होती और अधर्म बढ़ता है,

हे भारत, तब-तब में प्रकट होता हूँ।

सत्पुरुपों की रक्षा और दुष्टों का विनाश करके,

धर्म की पुर्नस्थापना के लिए हर युग में अवतार लेता हूँ॥

~ श्री कृष्ण (अध्याय 4, श्लोक 7-8)

अहिंसा परमो धर्मः धर्म हिंसा तथैव च।

अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है और धर्म रक्षार्थ हिंसा भी उसी प्रकार श्रेष्ठ है।

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।

देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

अर्थ-

कंस और चाणूरका वध करनेवाले,

देवकीके आनन्दवर्द्धन, वसुदेवनन्दन,

जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं वन्दना करता हूँ।

पुनीत बिसारिया

रूपान्तर

आर्यन गुप्ता
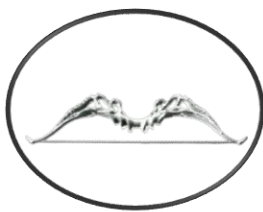
मेरुदंड (हेडक्वार्टर)

प्रस्तावना

श्रीमद्भगवद्गीता – एक ऐसा दिव्य ग्रंथ जो केवल शास्त्र नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन का दर्शन है। यह ग्रंथ आत्मा, कर्म, धर्म, और जीवन के सत्य पर आधारित वह शाश्वत मार्गदर्शन प्रदान करता है, जो मानव जीवन को अर्थपूर्ण और आनंदमय बनाता है। इस गूढ़ और अलौकिक ज्ञान को सरल, स्पष्ट और सुलभ भाषा में प्रस्तुत करना एक विलक्षण कार्य है, और इस दिशा में गुरुदेव श्री पुनीत बिसारिया जी ने एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया है।

गुरुदेव श्री पुनीत बिसारिया जी, जिन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता का 100 से अधिक बार मनन और चिंतन किया है, ने इसके अमृत समान ज्ञान को अपनी सहज बुद्धि और आध्यात्मिक दृष्टि से इस प्रकार संकलित किया है कि हर व्यक्ति इसे कम समय में समझ सके और अपने जीवन में उतार सके। उनकी यह साधना केवल अध्ययन नहीं, बल्कि गीता के दिव्य तत्वों को आत्मसात करने और उन्हें युगानुकूल स्वरूप में प्रस्तुत करने का एक चमत्कारिक प्रयास है।

यह कृति केवल एक संकलन नहीं, बल्कि ज्ञान, प्रेरणा और आत्मा के उत्थान का एक अमूल्य उपहार है। इसमें गीता के गूढ़ तत्वों को इतने सरल, रोचक और सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है कि हर पाठक इसे पढ़ते समय स्वयं को श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद का साक्षी महसूस करता है। यह पुस्तक न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह आधुनिक जीवन की चुनौतियों का समाधान भी प्रस्तुत करती है।

गुरुदेव श्री पुनीत बिसारिया जी ने जिस समर्पण और श्रद्धा से इस ग्रंथ को प्रस्तुत किया है, वह उनके ज्ञान, साधना और समाज के प्रति उनके योगदान का प्रमाण है। यह कृति उन सभी के लिए एक अमूल्य धरोहर है, जो अपने जीवन में सत्य, शांति और आत्मबोध की खोज कर रहे हैं।

श्री पुनीत बिसारिया जी का यह दिव्य प्रयास उन्हें इस युग के उन अद्वितीय मार्गदर्शकों की श्रेणी में स्थापित करता है, जिन्होंने केवल पढ़ाया नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला सिखाई है। यह पुस्तक हर पाठक को प्रेरणा, साहस और आध्यात्मिक ऊर्जा से भर देगी।

आइए, इस पुस्तक का अध्ययन कर अपने जीवन को वह दिशा दें, जिसे गीता के ज्ञान की ज्योति आलोकित कर सके। गुरुदेव श्री पुनीत बिसारिया जी को उनके इस अनुपम योगदान के लिए कोटिशः नमन और इस ज्ञान यात्रा में शामिल होने वाले सभी पाठकों को शुभकामनाएँ।

~ आर्यन गुप्ता (संस्थापक,मेरुदंड)

समर्पण

इस पुस्तक को समर्पित करता हूँ उन महान आत्माओं को, जिनकी निस्वार्थ प्रेरणा और सहयोग ने इसे वास्तविकता का रूप दिया।

गुरुदेव श्री पुनीत बिसारिया जी

जिनकी आध्यात्मिक दृष्टि और मार्गदर्शन ने मेरे मन में इस पुस्तक को प्रकाशित करने का विचार उत्पन्न किया। यह उनकी कृपा और ज्ञान की अमूल्य देन है।

विकास रंजन

एक कुशल सॉफ़्टवेयर इंजीनियर, जिनके सुझावों को प्रयोग में ला कर यह कार्य शीघ्रता और उत्कृष्टता से सम्पन्न हो सका।

चैतन्य गुप्ता

मेरे प्रिय भाई, जिन्होंने एडिटिंग और डिज़ाइनिंग के क्षेत्र में अपना बहुमूल्य योगदान देकर इस पुस्तक को एक सुंदर स्वरूप प्रदान किया।

आर्यन गुप्ता

और अंततः मैं स्वयं – अब मेरे बारे में क्या ही कहूं! जो कुछ भी है, वह सब इन अद्भुत व्यक्तित्वों के सहयोग और आशीर्वाद का परिणाम है। **यह पुस्तक आप सभी के प्रति मेरी कृतज्ञता और श्रद्धा का प्रतीक है।**

प्रकाशक की कलम से:

मेरा नाम आर्यन गुप्ता है। मैं यात्रा करना, व्यायाम करना और किताबें पढ़ना पसंद करता हूँ। इसके साथ ही मैं एक नौकरीपेशा व्यक्ति हूँ, जो अपने पेशेवर जीवन और व्यक्तिगत रुचियों के बीच संतुलन बनाए रखने में विश्वास करता है।

गुरुदेव श्री पुनीत बिसारिया जी, जिन्होंने भगवद्गीता का अध्ययन 100 से अधिक बार किया है और उसका गहन चिंतन किया है, ने भगवद्गीता के इस सार को वर्षों पहले अपने यूट्यूब चैनल पर साझा किया था। आज, इस चैनल के 15 लाख से अधिक सब्सक्राइबर हैं। उन्हीं के अमूल्य विचारों को मैंने आज कागज पर उतारा है।

इस पुस्तक का प्रकाशन मेरे लिए एक अनमोल अनुभव रहा है, क्योंकि यह न केवल ज्ञान का प्रसार करती है, बल्कि इसके निर्माण में मेरा योगदान मुझे गर्व की अनुभूति कराता है। आशा है कि यह पुस्तक पाठकों को प्रेरित करेगी और उनके जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाएगी

~ आर्यन गुप्ता

अनुक्रमणिका

अध्याय १: अर्जुन विषाद योग (57-61)

गीता के पहले अध्याय, जिसे अर्जुन विषाद योग कहा जाता है, में अर्जुन के मानसिक और भावनात्मक संघर्ष का वर्णन किया गया है। यह अध्याय महाभारत के युद्धभूमि की पृष्ठभूमि तैयार करता है और अर्जुन के दुविधा, शोक, और मोह का विस्तार से वर्णन करता है।

अध्याय का मुख्य सारांश:

1. धृतराष्ट्र और संजय का संवाद:

धृतराष्ट्र संजय से युद्ध का वर्णन सुनते हैं। संजय, जिन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त है, बताते हैं कि कौरवों और पांडवों की सेनाएं कुरुक्षेत्र में आमने-सामने खड़ी हैं।

2. दुर्योधन का द्रोणाचार्य से संवाद:

दुर्योधन अपनी सेना की ताकत और रणनीति की प्रशंसा करते हुए द्रोणाचार्य को धृष्टद्युम्न का ताना मारता है। वह उनसे विशेष रूप से भीष्म पितामह की सुरक्षा का आग्रह करता है क्योंकि शिखंडी के कारण उनकी रक्षा की चिंता थी।

3. युद्ध की घोषणा:सबसे पहले भीष्म पितामह शंख बजाते हैं, इसके बाद श्रीकृष्ण और अन्य महारथी शंख बजाते हैं, जिससे युद्ध का प्रारंभिक संकेत मिलता है।

4. अर्जुन की दुविधा:

अर्जुन, श्रीकृष्ण से रथ को युद्ध के मैदान के बीच ले जाने का अनुरोध करता है ताकि वह दोनों पक्षों की सेनाओं को देख सके। अपने प्रियजनों को विरोधी पक्ष में देखकर वह गहरे विषाद में डूब जाता है।

5. अर्जुन का शोक और मोह:

अर्जुन अपने कर्तव्य और नैतिकता के बीच फंसा हुआ महसूस करता है। वह कहता है कि अपने सगे-संबंधियों को मारकर प्राप्त राज्य, सुख, या स्वर्ग भी उसे स्वीकार नहीं है। वह युद्ध करने में असमर्थता जताते हुए अपने हथियार रख देता है।

6. श्रीकृष्ण का मौन:

पूरा अध्याय अर्जुन के आत्मसंघर्ष और विषाद को दिखाने पर केंद्रित है। श्रीकृष्ण इसे बिना किसी हस्तक्षेप के सुनते हैं, क्योंकि यह क्षण अर्जुन के भ्रम को समझने और उसे दूर करने के लिए आवश्यक था।

महत्व: यह अध्याय गीता की भूमिका है, जो मानव जीवन की दुविधाओं और संघर्षों का प्रतीक है। अर्जुन का विषाद दर्शाता है कि हर व्यक्ति अपने जीवन में कभी न कभी मोह और असमंजस का सामना करता है।

श्रीकृष्ण का मौन यह सिखाता है कि समाधान से पहले समस्या को पूरी तरह समझना आवश्यक है।

यह अध्याय आगे के संवाद की नींव रखता है, जिसमें श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्म, धर्म, और योग के माध्यम से जीवन की गहन शिक्षाएं देंगे।

अध्याय २: सांख्य योग (ज्ञान योग) (62-71)

गीता के दूसरे अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्तव्य, आत्मा की अमरता, और कर्मयोग का ज्ञान देते हैं। यह अध्याय गीता का आधार माना जाता है क्योंकि इसमें गीता का मूल संदेश निहित है।

मुख्य सारांश

1. अर्जुन का मोह और धर्मसंकट:

अर्जुन युद्धभूमि में अपने कर्तव्य (धर्म) और सगे-संबंधियों के प्रति मोह के बीच उलझकर मानसिक संतुलन खो देता है। वह युद्ध से पीछे हटने की इच्छा जताता है।

2. आत्मा की अमरता:

श्रीकृष्ण समझाते हैं कि आत्मा अमर है और शरीर नश्वर। आत्मा न तो मरती है, न जन्म लेती है। शरीर केवल वस्त्र की भांति बदला जाता है। इसलिए मृत्यु का शोक करना अज्ञानता है।

3. धर्म और कर्तव्य का महत्व: व्यक्ति का धर्म उसके स्वभाव और भूमिका के अनुसार होता है। अर्जुन का धर्म (क्षत्रिय धर्म) युद्ध करना है। धर्म का पालन न करना अपयश और अधर्म है।

4. कर्मयोग:

श्रीकृष्ण सिखाते हैं कि फल की कामना किए बिना कर्तव्य करना ही कर्मयोग है। कर्म का अधिकार हमारा है, लेकिन फल का नहीं।

5. स्थितप्रज्ञ के लक्षण:

जो व्यक्ति सुख-दुख, लाभ-हानि, और जय-पराजय में समान भाव रखता है, उसे स्थितप्रज्ञ (स्थिर बुद्धि) कहते हैं। वह संसार की माया और विक्षोभ से परे होता है।

महत्व

1. जीवन में कर्तव्यपरायणता:

यह अध्याय सिखाता है कि व्यक्ति को अपने कर्तव्य का पालन बिना किसी अपेक्षा या भय के करना चाहिए।

2. आध्यात्मिक ज्ञान:

आत्मा और शरीर का भेद समझाकर श्रीकृष्ण बताते हैं कि आत्मा अजर-अमर है। यह विचार मृत्यु के भय और मोह को समाप्त करता है।

3. मानसिक शांति का सूत्र: फल की चिंता किए बिना कर्म करने से व्यक्ति निराशा, असफलता, और भय से मुक्त हो जाता है।

4. संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा:

सुख-दुख और सफलता-असफलता में समान भाव रखने की शिक्षा स्थितप्रज्ञता का आदर्श प्रस्तुत करती है।

संक्षेप में: दूसरा अध्याय अर्जुन के मोह को मिटाकर उसे ज्ञान, धर्म, और कर्मयोग का उपदेश देता है। यह अध्याय सिखाता है कि मनुष्य का कर्तव्य धर्म के अनुसार कर्म करना है, जबकि फल की चिंता भगवान पर छोड़ देनी चाहिए।

अध्याय ३: कर्म योग (72-79)

गीता के इस अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने कर्म योग का विस्तार से वर्णन किया है। यह अध्याय यह सिखाता है कि कैसे मनुष्य निष्काम भावना से कर्म करते हुए अपने धर्म का पालन कर सकता है।

मुख्य सारांश

1. अर्जुन की शंका:

अर्जुन पूछता है कि अगर ज्ञान श्रेष्ठ है, तो युद्ध जैसे कर्म क्यों करना चाहिए? भगवान श्रीकृष्ण स्पष्ट करते हैं कि युग में दो मार्ग हैं:

ज्ञान योग: केवल ज्ञान प्राप्ति के प्रयास में कर्म का त्याग।

कर्म योग: फल की इच्छा किए बिना, अपने धर्म अनुसार कर्म करना।

2. कर्म योग का महत्व:

केवल ज्ञान का अभ्यास करने से वह उपयोगी नहीं होता जब तक उसे कर्म में नहीं बदला जाता। कर्म करते हुए ज्ञान प्राप्त करना और ज्ञान के साथ कर्म करना जीवन को सार्थक बनाता है।

निष्काम कर्म ही सृष्टि के संतुलन को बनाए रखता है।

3. अपने धर्म और कर्तव्य का पालन:

हर व्यक्ति का धर्म उसके मूल स्वभाव से निर्धारित होता है।

यदि कोई सैनिक युद्ध से पीछे हटेगा, तो वह कायर और अधर्मी माना जाएगा। जैसे किसान अपने कर्तव्य से पूरी दुनिया का पोषण करता है, वैसे ही हर व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करना चाहिए।

4. सृष्टि का संतुलन:

सृष्टि का चक्र सभी के कर्मों से चलता है। यदि कोई अपने कार्य का त्याग करेगा, तो पूरी व्यवस्था बिगड़ जाएगी।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि भले ही वे सभी कर्तव्यों से परे हैं, फिर भी वे कर्म करते हैं ताकि लोग उनका अनुसरण करें।

5. निष्काम भावना से कर्म: अर्जुन को समझाया गया कि फल की चिंता किए बिना अपने कर्म को समर्पण भाव से करें। यदि वह पापियों का नाश करता है, तो भी यह अधर्म नहीं होगा, क्योंकि यह धर्म और मानवता की रक्षा के लिए होगा।

6. भक्ति और समर्पण:

यदि अर्जुन को समझ न आए, तो वह अपने सभी कर्म भगवान को समर्पित कर दे। ऐसा करने से वह मुक्त होकर निष्काम कर्म कर सकेगा।

महत्व

1. जीवन में कर्म की अनिवार्यता:

जीवन में हर व्यक्ति को अपने धर्म और कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। निष्क्रियता से अराजकता फैलती है।

2. निष्काम भावना:

फल की इच्छा और अपेक्षा न रखते हुए कर्म करने से व्यक्ति मानसिक शांति और संतोष प्राप्त करता है।

3. सामाजिक संतुलन:

हर व्यक्ति का कर्म सृष्टि के संतुलन में योगदान देता है। बिना कर्म के यह संतुलन टूट सकता है।

4. धर्म का पालन: व्यक्ति का धर्म उसके स्वभाव और भूमिका के अनुसार होता है। इसे अपनाकर ही जीवन सार्थक बनता है।

संक्षेप में: तीसरा अध्याय यह सिखाता है कि अपने कर्तव्य का पालन करते हुए कर्म योग अपनाना चाहिए। फल की इच्छा किए बिना निष्काम भावना से कर्म करना ही सच्चा धर्म और जीवन का मूल उद्देश्य है।

अध्याय ४: ज्ञान, कर्म और संन्यास (80-86)

मुख्य सारांश:

1. ज्ञान और कर्म का महत्व:

ज्ञान और कर्म परस्पर पूरक हैं। बिना ज्ञान के कर्म और बिना कर्म के ज्ञान दोनों व्यर्थ हैं। कर्म करते-करते ज्ञान प्राप्त करना और ज्ञान प्राप्त करते-करते कर्म करना ही श्रेष्ठ है।

2. भगवान कृष्ण के अवतार का उद्देश्य:

जब-जब धर्म का पतन और अधर्म का उत्थान होता है, तब भगवान धर्म की स्थापना, साधुओं की रक्षा और पापियों के विनाश के लिए अवतरित होते हैं। कृष्ण के कर्म इच्छा रहित और लोक कल्याण के लिए होते हैं।

3. वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य:गुण और कर्म के आधार पर चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) बनाए गए। यह व्यवस्था समाज में संतुलन और प्रगति के लिए थी, लेकिन जन्म आधारित भेदभाव को भगवान ने अनुचित बताया।

4. कर्म का बंधन:

कर्म का बंधन फल की इच्छा से जुड़ा होता है, न कि स्वयं कर्म से। निष्काम कर्म से व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

5. कृष्ण की वास्तविकता:

कृष्ण के कर्म "लीला" हैं, क्योंकि वे फल की इच्छा से मुक्त हैं।

जो व्यक्ति इस सत्य को समझकर उसी भाव से कर्म करता है, वह भी मोक्ष को प्राप्त करता है।

महत्व:

कर्मयोग का सार: अपने धर्म और कर्तव्य का पालन करते हुए निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए।

धर्म की रक्षा: भगवान का अवतार धर्म की स्थापना और समाज के संतुलन को बनाए रखने के लिए होता है।

आत्मनिर्भरता: अपने सुख-दुख को बाहरी वस्तुओं या व्यक्तियों से जोड़ना व्यर्थ है।

समाज का संतुलन: गुण और कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था समाज के संतुलित विकास के लिए आवश्यक है।

यह अध्याय जीवन में कर्म और ज्ञान के संतुलन का महत्व समझाता है और प्रेरित करता है कि हम अपने कर्तव्यों को निष्काम भाव से निभाते हुए मोक्ष की ओर अग्रसर हों।

अध्याय ५: कर्म संन्यास योग (87-90)

पांचवा अध्याय "कर्म संन्यास योग" का मुख्य संदेश यह है कि कर्म और संन्यास (त्याग) का सही अर्थ समझना ही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि संन्यास का मतलब केवल कर्मों को छोड़ देना नहीं है, बल्कि कर्म के फलों की इच्छा का त्याग करना है।

मुख्य सारांश

1. कर्म और संन्यास का महत्व:

अर्जुन के संन्यास और कर्म योग में श्रेष्ठता के प्रश्न पर श्रीकृष्ण स्पष्ट करते हैं कि दोनों ही मार्ग श्रेष्ठ हैं, लेकिन कर्म योग अधिक व्यावहारिक और प्रभावी है।

संन्यास का अर्थ "राग-द्वेष और आकांक्षाओं का त्याग" है, न कि घर-बार छोड़ देना व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए फल की आसक्ति को छोड़ देना चाहिए। यही सच्चा कर्म संन्यास है।

2. समान दृष्टिकोण (समदर्शिता): ज्ञानी व्यक्ति हर जीव और हर परिस्थिति को समान दृष्टि से देखता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि गाय, हाथी, कुत्ता, चांडाल जैसे प्राणी ज्ञानी के लिए समान होते हैं क्योंकि वह आत्मा के स्तर पर सभी को एक समान मानता है।

यह समदृष्टि (समानता का भाव) ही मनुष्य को स्थिर और शांत बनाती है।

3. सुख-दुख से ऊपर उठना:

ज्ञानी व्यक्ति के लिए सुख और दुख समान होते हैं। वह किसी भी स्थिति में विचलित नहीं होता और अपनी बुद्धि को स्थिर बनाए रखता है। मोह, क्रोध, और वासनाओं से मुक्त होकर, व्यक्ति शाश्वत शांति प्राप्त करता है।

4. कर्मों का समर्पण:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि अपने सभी कर्म भगवान को समर्पित कर देने वाला व्यक्ति मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। भगवान में समर्पण के माध्यम से व्यक्ति कर्मों के बंधन से मुक्त हो जाता है।

5. शांति और मोक्ष:

सच्ची शांति प्राप्त करने के लिए इच्छाओं का त्याग और भगवान के प्रति समर्पण आवश्यक है। ऐसा व्यक्ति जो समर्पण और निष्काम कर्म के मार्ग पर चलता है, उसे स्थायी मोक्ष प्राप्त होता है।

महत्व

1. जीवन जीने का मार्ग: यह अध्याय कर्मयोग का महत्व समझाता है, जो एक साधारण गृहस्थ के लिए भी आदर्श है। यह बताता है कि भगवान का सच्चा भक्त कर्म करते हुए भी संन्यासी बन सकता है।

2. आध्यात्मिक शांति का सूत्र:

आत्मा और परमात्मा के बीच एकता का अनुभव करते हुए, इच्छाओं और मोह से मुक्त व्यक्ति शाश्वत शांति को प्राप्त करता है।

3. समता और समर्पण का महत्व:

यह अध्याय समानता, आत्म-नियंत्रण, और समर्पण की शिक्षा देता है, जो व्यक्ति को उच्च आध्यात्मिक अवस्था तक ले जाती है।

4. व्यावहारिक दृष्टिकोण:

कर्मों से भागने के बजाय, उन्हें भगवान को समर्पित कर फल की चिंता छोड़ने का सरल और व्यावहारिक मार्ग सुझाया गया है।

अध्याय का निष्कर्ष:

श्रीकृष्ण का संदेश स्पष्ट है कि "कर्तव्य का पालन करते हुए इच्छाओं का त्याग करना और सभी कर्म भगवान को समर्पित करना ही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है।" कर्मयोग, संन्यास से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि यह संतुलित, व्यावहारिक और सभी के लिए उपलब्ध है।

"सच्चा कर्म योगी वह है जो कर्म करते हुए भी इच्छाओं और आसक्तियों से मुक्त रहता है।"

अध्याय ६: ध्यान योग (91-98)

छठा अध्याय "ध्यान योग" का मुख्य संदेश यह है कि मनुष्य अपने मन को वश में करके और ध्यान योग का अभ्यास करके आत्मा में लीन हो सकता है। यह अध्याय विशेष रूप से आत्म-नियंत्रण, अभ्यास, और वैराग्य के माध्यम से ध्यान योग के महत्व को समझाता है।

मुख्य सारांश

1. ध्यान और आत्मसाक्षात्कार का महत्व:

भगवान श्रीकृष्ण बताते हैं कि ध्यान योग का अभ्यास व्यक्ति को परम शांति और मोक्ष तक पहुंचाता है। ध्यान लगाने का सही तरीका है, मन को विचारों से मुक्त कर अपने भीतर की आत्मा (स्वयं) पर केंद्रित करना।

2. स्वयं पर ध्यान केंद्रित करना:

भगवान कहते हैं कि मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु।

आत्म-साक्षात्कार (स्वयं की पहचान) और आत्म-नियंत्रण ही जीवन में सफलता और शांति का मार्ग है।

3. आत्मजयी व्यक्ति के लक्षण:

जिसने अपने मन को जीत लिया है, उसके लिए सुख-दुख, मान-अपमान, सर्दी-गर्मी सब समान होते हैं। आत्मजयी व्यक्ति के लिए मिट्टी, पत्थर, और सोना एक समान होते हैं। वह सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखता है और किसी भी भेदभाव से ऊपर होता है।

4. ध्यान योग की विधि:

योगी को एकांत में बैठकर ध्यान लगाना चाहिए। रीढ़ की हड्डी और सिर को सीधा रखते हुए नासिका की ओर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। मन को विचारहीन करने का अभ्यास करते हुए गहरी सांसें लेनी चाहिए।

5. मन को वश में करने के तरीके:अभ्यास: बार-बार ध्यान लगाने की कोशिश करना, चाहे मन बार-बार भटके।

वैराग्य: इच्छाओं और कामनाओं को त्यागना क्योंकि इनका कोई अंत नहीं है।

6. संतुलन और संयम: भगवान बताते हैं कि ध्यान योग में सफलता के लिए आहार, विहार, सोने-जागने, और कर्म करने में संतुलन और संयम रखना आवश्यक है। अति किसी भी चीज की ध्यान योग में बाधा बनती है।

7. अच्छे कर्मों का कभी नाश नहीं होता:

अर्जुन के सवाल पर कि अगर मोक्ष से पहले मृत्यु हो जाए तो क्या होगा, श्रीकृष्ण समझाते हैं कि अच्छे कर्म कभी व्यर्थ नहीं जाते। व्यक्ति अगले जन्म में अपने संस्कारों और प्रयासों के आधार पर आगे बढ़ता है। अंततः हर आत्मा भगवान में लीन हो जाती है।

महत्व

1. ध्यान योग का महत्व:

यह अध्याय सिखाता है कि ध्यान योग केवल मोक्ष का ही नहीं, बल्कि मानसिक शांति और आत्म-साक्षात्कार का भी साधन है। यह छात्रों और उन सभी के लिए विशेष रूप से उपयोगी है, जो अपने लक्ष्य पर ध्यान केंद्रित करना चाहते हैं।

2. आत्म-नियंत्रण का संदेश:

अपने मन और इच्छाओं को वश में करना आत्मजयी बनने की प्रक्रिया है। यह संदेश हर व्यक्ति के लिए प्रेरणा देता है कि वे अपने जीवन का नियंत्रण खुद संभालें।

3. संयम और संतुलन का महत्व:

अध्याय समझाता है कि जीवन में संतुलन और संयम ही मन को स्थिर और ध्यान को गहन बना सकते हैं।

4. अभ्यास और वैराग्य का मूल्य:

यह अध्याय बताता है कि निरंतर अभ्यास और इच्छाओं का त्याग किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने में मदद करता है।

5. कर्मों की अनश्वरता: यह विचार कि अच्छे कर्म कभी नष्ट नहीं होते, व्यक्ति को हर परिस्थिति में प्रेरित रहने का बल देता है।

अध्याय का निष्कर्ष:

ध्यान योग जीवन में मानसिक शांति और आत्मज्ञान प्राप्त करने का सबसे सरल और शक्तिशाली मार्ग है। भगवान श्रीकृष्ण के शब्दों में, "जो व्यक्ति अपने मन को वश में कर लेता है, वह आत्मजयी बनकर परम आनंद प्राप्त करता है।"

अध्याय ७: ज्ञान-विज्ञान योग (99-102)

सातवां अध्याय "ज्ञान-विज्ञान योग" में भगवान श्रीकृष्ण ने ज्ञान (अप्रत्यक्ष सत्य) और विज्ञान (प्रत्यक्ष सत्य) का महत्व समझाया है। यह अध्याय बताता है कि किस प्रकार भगवान ही इस संपूर्ण ब्रह्मांड के आधार और संचालक हैं।

मुख्य सारांश

1. भगवान का आश्रय लेना:

श्रीकृष्ण कहते हैं, "हे अर्जुन, अपना मन मुझ में लगा और केवल मेरा ही आश्रय ले।" इसका अर्थ है कि मनुष्य को किसी व्यक्ति या वस्तु से कोई आशा नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि सब कुछ भगवान से ही आता है।

2. ज्ञान और विज्ञान का भेद:

ज्ञान: उन चीजों को जानना जो अप्रत्यक्ष हैं, जैसे आत्मा, ईश्वर, ब्रह्मांड की अदृश्य शक्ति।

विज्ञान: उन चीजों को जानना जो प्रत्यक्ष रूप से दिखती हैं, जैसे प्रकृति, तत्व, शरीर।

इन दोनों को समझने के बाद और कुछ भी जानने योग्य नहीं रह जाता।

3. ब्रह्मांड में भगवान की उपस्थिति:

संपूर्ण ब्रह्मांड भगवान का जड़ तत्व (शरीर) है और इसे चलाने वाली चेतना भगवान का चेतन तत्व (आत्मा) है। यह ब्रह्मांड भगवान से उत्पन्न होता है और अंततः उन्हीं में विलीन हो जाता है।

4. ज्ञान प्राप्त करना कठिन क्यों है?

श्रीकृष्ण बताते हैं कि लाखों में से कोई एक व्यक्ति ऐसा होता है जो भगवान को जानने की कोशिश करता है, और उनमें से भी कोई विरला ही भगवान को पूर्ण रूप से जान पाता है। कारण: मनुष्य मोह, माया, और तीन गुणों (सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण) में बंधा हुआ है।

5. मोह-माया का पर्दा:

यह मोह-माया वह पर्दा है जो मनुष्य को भगवान (कठपुतली चलाने वाले) को देखने से रोकता है। अज्ञानी व्यक्ति इसे नहीं समझ पाते और भौतिक सुखों में उलझे रहते हैं।

6. ज्ञानी और अज्ञानी का भेद:

अज्ञानी व्यक्ति कठपुतली को देखकर भ्रमित हो जाते हैं, जबकि ज्ञानी समझते हैं कि कठपुतली को कोई और चला रहा है। ज्ञानी अपने प्रयासों से मोह-माया से परे जाकर भगवान को जानने का प्रयास करते हैं।

7. भगवान में विश्वास:

भगवान कहते हैं कि जो मनुष्य केवल मुझ पर ध्यान केंद्रित करता है और मुझमें विश्वास रखता है, वही मोह-माया के बंधन को तोड़कर सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

महत्व

1. आध्यात्मिक दृष्टिकोण का विकास:

यह अध्याय सिखाता है कि भगवान ही इस संसार के मूल कारण और शक्ति हैं। ज्ञान और विज्ञान के माध्यम से भगवान को जानने का प्रयास करना मनुष्य को आध्यात्मिक रूप से प्रगति करता है।

2. मोह-माया से बाहर निकलने का संदेश:

अध्याय बताता है कि मोह-माया ही मनुष्य को भटकाती है और भगवान से दूर रखती है। इससे बाहर निकलकर ही भगवान को जाना जा सकता है।

3. ज्ञान और विज्ञान का संतुलन: अध्याय हमें यह समझने के लिए प्रेरित करता है कि प्रत्यक्ष (विज्ञान) और अप्रत्यक्ष (ज्ञान) दोनों को समझे बिना जीवन अधूरा है।

4. भगवान पर विश्वास का महत्व: मन को भगवान में लगाने और उनके आश्रय में रहने से मनुष्य अपने जीवन की सभी उलझनों से मुक्त हो सकता है।

5. आत्मा और ब्रह्मांड का संबंध:

यह अध्याय आत्मा और ब्रह्मांड के बीच के गहरे संबंध को समझने का प्रयास है, जो कि भगवान के बिना असंभव है।

अध्याय का निष्कर्ष:

सातवां अध्याय "ज्ञान-विज्ञान योग" यह सिखाता है कि भगवान ही समस्त ब्रह्मांड के संचालक हैं। केवल भगवान के आश्रय में जाकर और मोह-माया से परे होकर ही मनुष्य उन्हें जान सकता है।

अध्याय ८: अक्षरब्रह्म योग (103-106)

आठवां अध्याय "अक्षरब्रह्म योग" में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के सात प्रश्नों के उत्तर देते हैं और यह बताते हैं कि मृत्यु के समय मन को स्थिर रखने और मोक्ष प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए।

मुख्य सारांश

1. प्रश्न 1: ब्रह्म क्या है? ब्रह्म वह है जो कभी नष्ट नहीं होता, जो न घटता है न बढ़ता है, और सदा एक समान रहता है।

ब्रह्म: शाश्वत, अजर-अमर सत्य।

2. प्रश्न 2: अध्यात्म क्या है?

किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं को पहचानने और जानने का प्रयास अध्यात्म है।

अध्यात्म: आत्मा का ज्ञान।

3. प्रश्न 3: कर्म क्या है?

वर्तमान में जो भी कर्तव्य है, उसे निष्काम भाव से करना ही कर्म है।

कर्म: अतीत और भविष्य की चिंता किए बिना वर्तमान में अपने कर्तव्य का निर्वाह करना।

4. प्रश्न 4: अधिभूत क्या है?

जो चीजें जन्म लेती हैं और नष्ट हो जाती हैं वे अधिभूत हैं।

अधिभूत: प्रकृति और भौतिक जगत।

5. प्रश्न 5: अधिदेव क्या है?

सभी चीजों का प्राण तत्व (चेतना) अधिदेव है।

अधिदेव: भगवान स्वयं।

6. प्रश्न 6: अधियज्ञ क्या है? ब्रह्मांड में होने वाली सभी क्रियाओं का संचालक भगवान हैं, जो उन्हें यज्ञ भावना से करते हैं, बिना किसी लाभ की अपेक्षा के। **अधियज्ञ:** भगवान द्वारा की गई निष्काम क्रियाएं।

7. प्रश्न 7: मृत्यु के समय चित्त को कैसे स्थिर करें? मृत्यु के समय जो व्यक्ति जिस भावना का स्मरण करता है, वह उसी अवस्था को प्राप्त करता है।

जीवनभर की भावनाएं और कर्म अंतिम क्षण की भावना को प्रभावित करते हैं।

सार: इसलिए हर समय भगवान का स्मरण करना चाहिए।

कर्म और कर्तव्य का महत्व:

भगवान कहते हैं:

"मेरा स्मरण कर और युद्ध कर।"

यहां "युद्ध" का अर्थ है अपने कर्तव्य को निभाना।

प्रत्येक व्यक्ति का धर्म उसके कर्म पर निर्भर करता है।

निष्काम भाव से अपने कर्तव्यों को करते हुए भगवान का स्मरण करना ही धर्म का पालन है।

अंतिम क्षण की महत्ता: मृत्यु के समय की भावना मनुष्य के अगले जन्म या मोक्ष को निर्धारित करती है। जो व्यक्ति जीवनभर शुभ कर्म करता है और भगवान का स्मरण करता है, उसे अच्छी गति प्राप्त होती है।

ओम अक्षर का स्मरण और आत्मा में एकाग्रता से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

मोक्ष की प्राप्ति: मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष है। जो व्यक्ति बिना भटके, पूरी एकाग्रता और निरंतर अभ्यास के साथ आत्मा को जानने का प्रयास करता है, उसे मोक्ष मिलता है।

अध्याय का मुख्य संदेश:

1. भगवान का स्मरण और कर्तव्य का पालन:

हर समय भगवान को याद रखना और अपने कर्तव्यों को निष्काम भाव से निभाना चाहिए।

2. ध्यान और एकाग्रता का महत्व:

जीवनभर ध्यान और अभ्यास से मनुष्य अपने चित्त को स्थिर करता है।

3. अंतिम क्षण की तैयारी:

अपने अंतिम क्षण को तैयार करने के लिए हर समय शुभ कर्म और भगवान का स्मरण करना चाहिए।

4. मोक्ष का मार्ग:

आत्मज्ञान, ध्यान, और ओम अक्षर का स्मरण मोक्ष की ओर ले जाते हैं।

निष्कर्ष:

"अक्षरब्रह्म योग" का सार है कि जीवनभर भगवान का स्मरण करते हुए अपने कर्तव्यों को निष्काम भाव से निभाना चाहिए। मृत्यु के समय जो चित्त स्थिर और भगवान में एकाग्र रहता है, वह परम गति प्राप्त करता है।

अध्याय ९: राजविद्याराजगुह्य योग (107-112)

नौवां अध्याय, "राजविद्याराजगुह्य योग," में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दुनिया की सर्वश्रेष्ठ विद्या (राजविद्या) और सर्वोच्च रहस्य (राजगुह्य) का उपदेश दिया। इसमें भगवान यह बताते हैं कि भक्ति, श्रद्धा, और कर्म का सही भाव ही व्यक्ति को ब्रह्म तक पहुंचा सकता है और मोक्ष की ओर ले जाता है।

मुख्य सारांश

1. राजविद्या और राजगुह्य:

राजविद्या: यह सबसे श्रेष्ठ ज्ञान है, जो आत्मा और परमात्मा के संबंध को स्पष्ट करता है।

राजगुह्य: यह ब्रह्म का रहस्य है कि भगवान हर जगह हैं और हर चीज उन्हीं से बनी है।

यह विद्या केवल योग्य और श्रद्धावान व्यक्ति को ही दी जाती है।

2. श्रद्धा का महत्व:

भगवान कहते हैं कि जो भी श्रद्धा रखता है, वही मुझे प्राप्त कर सकता है।

बिना श्रद्धा के लोग संसार के चक्र में फंसे रहते हैं और मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाते।

3. ब्रह्म का रहस्य: पूरी सृष्टि भगवान की शक्ति से उत्पन्न, पोषित और नष्ट होती है। हर जीव और वस्तु में भगवान उपस्थित हैं। संसार में जो कुछ भी होता है, वह भगवान की इच्छा और शक्ति से होता है।

4. स्वर्ग और पुनर्जन्म का चक्र:

जो लोग यज्ञ और पूजा स्वर्ग प्राप्ति के लिए करते हैं, उन्हें स्वर्ग मिलता है।

लेकिन जैसे ही उनके पुण्य कर्म समाप्त हो जाते हैं, वे फिर से मृत्यु लोक में आ जाते हैं।

भगवान कहते हैं कि यह चक्र तब तक चलता रहेगा जब तक व्यक्ति मुझमें लीन नहीं होता।

5. देवताओं की पूजा का सत्य:

जो लोग देवताओं की पूजा करते हैं, वे अप्रत्यक्ष रूप से भगवान की ही पूजा कर रहे हैं। लेकिन यह पूजा सही विधि से नहीं होती क्योंकि वे यह नहीं समझते कि सभी देवताओं के स्वामी भगवान स्वयं हैं।

भगवान की भक्ति ही मोक्ष का मार्ग है।

6. भक्ति का सरल मार्ग:

भगवान कहते हैं कि श्रद्धा और स्वच्छ चित्त से अर्पित किया गया फल, फूल, या पत्ता भी मैं स्वीकार कर लेता हूं।

यह अर्पण बाहरी वस्तुओं का नहीं, बल्कि भावनाओं और श्रद्धा का है।

7. कर्म अर्पण का महत्व:

जो कुछ भी खाओ, दान करो, या तप करो, वह भगवान को अर्पित करो।

ऐसा करने से व्यक्ति अपने कर्मों के शुभ और अशुभ फलों से मुक्त हो जाता है।

8. मोक्ष का मार्ग:

सभी कर्मों को भगवान को समर्पित करने से व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है।

भगवान कहते हैं कि जो श्रद्धा और भक्ति से मेरी शरण में आता है, वह मुझमें लीन हो जाता है।

अध्याय का मुख्य संदेश:

1. श्रद्धा और भक्ति ही भगवान को प्राप्त करने का मार्ग है।

2. देवताओं की पूजा से स्वर्ग मिलता है, लेकिन मोक्ष केवल भगवान की भक्ति से ही संभव है।

3. भक्ति का सार भावनाओं और श्रद्धा में है, न कि भौतिक अर्पण में।

4. कर्म और जीवन के सभी कार्य भगवान को अर्पित करने से व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है।

निष्कर्ष: "राजविद्याराजगुह्य योग" का सार यह है कि भगवान की भक्ति और श्रद्धा से व्यक्ति अपने कर्मों के बंधन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। भगवान हर जगह हैं और हर चीज उन्हीं से बनी है। इसलिए व्यक्ति को हर समय भक्ति भाव से जीवन जीना चाहिए और अपने सभी कार्य भगवान को समर्पित करने चाहिए।

अध्याय १०: विभूति योग (113-120)

दसवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को अपनी "विभूतियों" (विशेष शक्तियों और उत्कृष्टताओं) का वर्णन करते हैं। भगवान यह समझाते हैं कि उनकी महिमा अनंत है और सृष्टि में जो भी श्रेष्ठ, अद्भुत और दिव्य है, वह उन्हीं की अभिव्यक्ति है। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य यह है कि अर्जुन समझ सके कि भगवान सृष्टि के हर अंश में व्याप्त हैं और हर उत्कृष्टता उन्हीं की शक्ति से संभव है।

मुख्य सारांश

1. भगवान की अनुपम श्रेष्ठता: भगवान कहते हैं कि उनकी उत्पत्ति और स्वरूप को देवता और महर्षि भी नहीं जान सकते, क्योंकि वे सब भगवान के बाद प्रकट हुए हैं। पूरी सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, और संहार का कारण भगवान स्वयं हैं।

2. विभूतियों का परिचय:भगवान ने बताया कि सृष्टि के हर श्रेष्ठ और दिव्य तत्व में उनकी ही झलक है।

जो कुछ भी अद्वितीय और उत्कृष्ट है, वह भगवान की विभूति है।

3. प्रमुख विभूतियाँ:

भगवान ने अपनी विभिन्न विभूतियों का वर्णन करते हुए बताया:

प्रकाश में: सूर्य और चंद्रमा।

वेदों में: सामवेद।

देवताओं में: इंद्र।

पर्वतों में: सुमेरू।

नदियों में: गंगा।

जानवरों में: सिंह।

पक्षियों में: गरुड़।

यज्ञों में: जप यज्ञ।

ऋतुओं में: वसंत।

स्त्रियों में: लक्ष्मी, वाणी (सरस्वती), स्मृति, बुद्धि, धारण शक्ति और क्षमा।

4. अर्जुन को संदेश:

भगवान ने कहा कि उनकी विभूतियों का कोई अंत नहीं है। जो भी विशेष ऐश्वर्य, तेज, या शक्ति दिखती है, वह उनकी ही झलक है।

अर्जुन को बताया कि हर किसी में भगवान को देखो और समझो कि वे हर जगह व्याप्त हैं।

5. समग्र दृष्टिकोण:

भगवान सृष्टि के "आदि, मध्य, और अंत" हैं।

वे सृजनकर्ता (ब्रह्मा), पालनकर्ता (विष्णु), और संहारकर्ता (शिव) के रूप में सृष्टि में विद्यमान हैं। उन्होंने अर्जुन को यह समझाया कि सभी जड़-चेतन वस्तुएं उन्हीं से उत्पन्न हुई हैं।

अध्याय का मुख्य संदेश:

1. भगवान की व्यापकता और सर्वव्यापकता:

भगवान हर चीज में विद्यमान हैं और जो भी श्रेष्ठ है, वह उनकी ही शक्ति है।

2. आत्मा और ब्रह्म का संबंध:

भगवान ने स्पष्ट किया कि वे हर प्राणी की आत्मा हैं और सभी का संचालन उन्हीं से होता है।

3. श्रद्धा और ज्ञान का महत्व:

भगवान की विभूतियों को समझने और उनका अनुभव करने के लिए श्रद्धा और भक्ति का भाव आवश्यक है।

निष्कर्ष: "विभूति योग" यह सिखाता है कि हर प्राणी और वस्तु में भगवान को देखना चाहिए, क्योंकि वे ही सभी उत्कृष्टताओं और विभूतियों के स्रोत

हैं। अर्जुन को यह ज्ञान देने का उद्देश्य यह था कि वह भगवान की महिमा को समझ सके और उनकी भक्ति में लीन होकर कर्मयोग का पालन कर सके।

अध्याय ११: विश्वरूपदर्शन योग (121-124)

इस अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपना विश्व रूप दिखाया। इस रूप में भगवान ने यह दिखाया कि वे (परम उर्जा) सृष्टि के संपूर्ण संचालनकर्ता हैं। वे न केवल सृजन और पालन के स्वामी हैं, बल्कि विनाश का कारण भी वही हैं।

मुख्य सारांश

1. अर्जुन की जिज्ञासा:

अर्जुन भगवान से निवेदन करता है कि वे अपना वास्तविक रूप दिखाएं, जिससे उसे यह समझ में आ सके कि भगवान का स्वरूप कैसा है।

2. दिव्य दृष्टि प्रदान करना:

भगवान कहते हैं कि अपने सामान्य मानव नेत्रों से अर्जुन उन्हें नहीं देख सकता। इसलिए वे उसे दिव्य नेत्र (दिव्य दृष्टि) प्रदान करते हैं।

3. विश्वरूप का वर्णन:

भगवान ने ऐसा विशाल, अनंत और चमकदार रूप प्रकट किया जिसे शब्दों में पूरी तरह व्यक्त नहीं किया जा सकता।

संजय (जो दिव्य दृष्टि से सब कुछ देख रहा था) धृतराष्ट्र को बताता है कि भगवान का यह रूप ऐसा था जैसे हजारों सूर्यों की चमक एक साथ आकाश में हो। भगवान के इस रूप में अनेक मुख, नेत्र, भुजाएं, और अनंत विस्तार था। अर्जुन को उस रूप का आदि, मध्य, और अंत समझ में नहीं आ रहा था।

4. अर्जुन की प्रतिक्रिया:

भगवान के विश्वरूप को देखकर अर्जुन चकित, भयभीत और व्याकुल हो जाता है। उसे इस विशाल और भयंकर रूप को देखकर शांति नहीं मिलती, बल्कि वह डरने लगता है।

5. विश्वरूप दिखाने का उद्देश्य:

भगवान यह दिखाना चाहते थे कि सृष्टि केवल सुंदर और मनोहर नहीं है, बल्कि इसमें भयावहता भी है। सृजन, पालन, और संघार (विनाश) – ये तीनों कार्य भगवान के लिए अनिवार्य हैं। शुभ और अशुभ कर्म भगवान के लिए समान हैं क्योंकि वे केवल सृष्टि की आवश्यकताओं के अनुसार कार्य करते हैं।

6. अर्जुन के कर्तव्य पर जोर:

भगवान अर्जुन को समझाते हैं कि सभी योद्धा पहले ही उनके द्वारा मारे जा चुके हैं। अर्जुन केवल एक निमित्त (माध्यम) है।

अर्जुन से कहा जाता है कि वह अपने कर्तव्य (युद्ध) को पूरा करे और इस भ्रम को त्याग दे कि वह स्वयं कुछ कर रहा है।

7. निमित्त का महत्व: "निमित्त" का अर्थ है कि भगवान ही हर कार्य के मूल कारण हैं। मनुष्य केवल एक उपकरण या माध्यम है।

इस दृष्टि से, किसी भी कार्य को करते समय मनुष्य को फल की चिंता या आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

अध्याय का मुख्य संदेश:

1. संपूर्णता की समझ:

भगवान का विश्वरूप यह सिखाता है कि सृष्टि का हर पहलू – सुंदर और भयानक, शुभ और अशुभ – सब भगवान का ही हिस्सा है।

2. कर्तव्य पालन: अर्जुन को बताया गया कि वह अपने कर्मों को निस्वार्थ भाव से करें और इस बात को समझें कि वह केवल एक निमित्त मात्र है।

3. आसक्ति और अहंकार का त्याग:

जो व्यक्ति यह समझ लेता है कि वह भगवान का माध्यम मात्र है और किसी कार्य के प्रति आसक्ति या द्वेष नहीं रखता, वही भगवान को प्राप्त कर सकता है।

निष्कर्ष:"विश्वरूपदर्शन योग" यह सिखाता है कि भगवान सृष्टि के हर रूप और हर कार्य में व्याप्त हैं। मनुष्य को अपने कर्म को ईश्वर का निमित्त मानकर, निस्वार्थ भाव से और बिना फल की इच्छा के करना चाहिए।

अध्याय १२: भक्ति योग (125-127)

बारहवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को भक्ति योग का महत्व और भक्ति के सही स्वरूप को समझाया। यह अध्याय मनुष्य को यह सिखाता है कि सच्ची भक्ति कैसे की जाए और जीवन में किस प्रकार का आचरण अपनाया जाए ताकि भगवान को प्राप्त किया जा सके और शाश्वत शांति का अनुभव किया जा सके।

मुख्य सारांश

1. अर्जुन का प्रश्न:

अर्जुन भगवान से पूछता है कि भगवान को प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए और किस प्रकार की भक्ति श्रेष्ठ है।

2. भगवान का उत्तर:

भगवान कहते हैं कि जो व्यक्ति अपनी इंद्रियों को वश में करके, सभी कर्म मुझे समर्पित करते हुए, एकाग्र चित्त से मेरी भक्ति करता है, वह मुझे प्राप्त करता है।

3. कर्म, भक्ति और त्याग के विकल्प:

यदि कोई व्यक्ति मन और बुद्धि को भगवान में स्थिर नहीं कर पाता, तो उसे लगातार अभ्यास करना चाहिए। यदि अभ्यास संभव न हो, तो सभी कर्मों को भगवान को समर्पित कर देना चाहिए। यदि यह भी कठिन हो, तो अपने कर्मों के फल का त्याग कर देना चाहिए।

भक्ति योग और ज्ञान योग में अंतर:

भक्ति योग: भगवान को कर्म समर्पित करना।

ज्ञान योग: कर्मों के फल को त्यागना।

4. प्रिय भक्त के गुण:

जो किसी से द्वेष नहीं करता और सभी का भला चाहता है।

दयालु, अहंकार रहित, और सुख-दुख को समान समझने वाला।

संतोषी, क्षमाशील, और स्थिर चित्त वाला।

जिसने मन और इंद्रियों को अपने वश में कर लिया हो।

किसी को परेशान न करने वाला और खुद भी परेशान न होने वाला।

लालसा, ईर्ष्या, और द्वेष से रहित।

शत्रु-मित्र, मान-अपमान, और शुभ-अशुभ को समान समझने वाला।

जो किसी विशेष स्थान या वस्तु के प्रति आसक्ति नहीं रखता।

संयमित वाणी, संतोषी, और स्थिर बुद्धि वाला।

5. सच्चे भक्त की परिभाषा:

जो सभी स्थितियों में समान भाव रखता है।

जो किसी भी वस्तु के मिलने पर अत्यधिक प्रसन्न या दुखी नहीं होता।

जिसने सभी प्रकार की इच्छाओं, अहंकार, और आसक्ति को त्याग दिया हो।

जो भगवान में पूर्ण विश्वास रखता है और उनकी शरण में रहता है।

भक्ति योग का मुख्य संदेश: भक्ति का मतलब केवल पूजा या प्रार्थना नहीं है, बल्कि अपने जीवन को इस प्रकार जीना है कि भगवान हर समय हमारे आचरण में प्रतिबिंबित हों। व्यक्ति को अपने सभी कर्म भगवान को समर्पित करते हुए, आसक्ति और फल की चिंता से मुक्त रहना चाहिए।

सच्ची भक्ति वही है जिसमें मनुष्य अहंकार, द्वेष, लालसा, और भय से मुक्त होकर सभी जीवों का भला चाहता है।

निष्कर्ष: भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार, जो व्यक्ति निष्काम भाव से भगवान की भक्ति करता है और उनके बताए हुए मार्ग पर चलता है, वही उन्हें प्राप्त कर सकता है। भक्ति योग मनुष्य को यह सिखाता है कि कैसे आत्म-नियंत्रण, दया, और समर्पण से जीवन में सच्चा आनंद पाया जा सकता है।

अध्याय १३: क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ–विभाग योग (128-131)

यह अध्याय आत्मा (क्षेत्रज्ञ) और शरीर (क्षेत्र) के बीच के संबंध को समझाने के साथ-साथ मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक गुणों को बताता है। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को वह मार्गदर्शन दिया जो व्यक्ति को आत्मज्ञान और मोक्ष तक पहुंचा सकता है।

मुख्य सारांश

1. क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का परिचय:

क्षेत्र: शरीर और उसका हर भौतिक पहलू (इंद्रियां, मन, बुद्धि)।

क्षेत्रज्ञ: आत्मा, जो इस शरीर को जानने वाला है।

भगवान बताते हैं कि शरीर नश्वर है, लेकिन आत्मा अमर और शाश्वत है।

आत्मा को जानना ही जीवन का मुख्य उद्देश्य है।

2. मोक्ष प्राप्त करने के लिए आवश्यक 18 गुण:

सम्मान से दूर रहना: बिना किसी प्रशंसा या मान की इच्छा से कार्य करना।

छल न करना: किसी को धोखा देने से बचना।

अहिंसा: किसी के प्रति हिंसा या बुरा सोचने से दूर रहना।

क्षमा भाव: हर किसी के प्रति क्षमाशील रहना।

सादगी: दिखावे से दूर रहकर सरल जीवन जीना।

गुरु की सेवा: गुरु का सम्मान और उनकी बातों का पालन करना।

शुद्धता: तन और मन की शुद्धता बनाए रखना।

मन की स्थिरता: इधर-उधर भटकने से बचना।

आत्मसंयम: जरूरत से ज्यादा किसी चीज का उपयोग न करना।

इंद्रियों से विरक्ति: इंद्रिय सुखों के मोह से बचना।

अहंकार का त्याग: स्वयं को बड़ा या श्रेष्ठ समझने से बचना।

कर्मों का दोष मानना: जीवन में सुख-दुख को अपने कर्मों का परिणाम मानना।

ममता का त्याग: परिवार के प्रति मोह से बचते हुए केवल कर्तव्य निभाना।**प्रिय-अप्रिय स्थितियों में समान रहना:** भगवान की इच्छा मानकर हर परिस्थिति में स्थिर रहना।

ईश्वर की भक्ति: सभी कार्यों को ईश्वर को समर्पित करना।

एकांत प्रियता: आत्मा को जानने के लिए एकांत में समय बिताना।

ईश्वर में निमित्त भाव: स्वयं को भगवान का उपकरण मानकर उद्देश्यपूर्ण जीवन जीना।

स्वयं को जानने का अभ्यास: ध्यान और आत्मचिंतन के माध्यम से आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझना।

3. ज्ञान का महत्व:

आत्मा और परमात्मा का वास्तविक ज्ञान ही मोक्ष का मार्ग है।

जो व्यक्ति इन गुणों को अपनाता है, वह ज्ञान और भक्ति के मार्ग पर आगे बढ़ता है।

13वें अध्याय का महत्व:

यह अध्याय हमें सिखाता है कि आत्मा और शरीर को समझकर हमें अपने कर्मों के प्रति जागरूक होना चाहिए।

आत्मा को जानने और जीवन के उद्देश्य को समझने से व्यक्ति सांसारिक मोह-माया से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

जीवन में सही गुणों और आचरण को अपनाकर, व्यक्ति न केवल भगवान को प्राप्त कर सकता है, बल्कि अपने जीवन को भी शांति और संतोष से भर सकता है।

निष्कर्ष:

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति इन 18 गुणों को अपने जीवन में उतारता है, वह आत्मा और परमात्मा के संबंध को समझ पाता है। यह समझना ही मोक्ष का मार्ग है।

अध्याय १४: गुणत्रयविभागयोग (132-135)

इस अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने तीन गुणों (सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण) का विस्तार से वर्णन किया है, जो हर व्यक्ति में पाए जाते हैं। इन गुणों के प्रभाव से इंसान संसार में बंधा रहता है और मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाता। इस अध्याय का उद्देश्य इन गुणों को पहचानकर उनसे मुक्त होना सिखाना है।

मुख्य सारांश

1. तीन गुणों का परिचय:

सतोगुण:प्रकाश देने वाला और स्वास्थ्यवर्धक। ज्ञान प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न करता है। परंतु ज्ञान की आसक्ति से मोक्ष बाधित हो जाता है।

रजोगुण:कर्मशीलता और उपलब्धियों की लालसा उत्पन्न करता है।

नई उपलब्धियों की इच्छा इंसान को कर्मफल में बांध देती है।

तमोगुण:आलस्य और अज्ञान को बढ़ावा देता है।

अज्ञान मोक्ष प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा है।

2. गुणों का प्रभाव:

हर व्यक्ति में ये तीनों गुण अलग-अलग मात्रा में होते हैं।

व्यक्ति का स्वभाव और कर्म उसके भीतर प्रबल गुण के अनुसार होते हैं।

सतोगुणी: उत्तम गति (मोक्ष की ओर) प्राप्त करता है।

रजोगुणी: मध्यम गति प्राप्त करता है।

तमोगुणी: निम्न गति (अधोगति) प्राप्त करता है।

3. गुणों से मुक्त व्यक्ति (गुणातीत) के लक्षण:

सुख-दुख में समान भाव।

मिट्टी, पत्थर, और सोने को समान मानना।

प्रिय-अप्रिय स्थितियों में स्थिर रहना।

निंदा और स्तुति में समान दृष्टिकोण।

मित्र और शत्रु के प्रति समान भाव।

कर्मफल की इच्छा का त्याग।

4. गुणों से मुक्त कैसे हुआ जाए:

निष्काम भावना से कर्म करना।

भगवान की भक्ति और समर्पण।

आत्मा और परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को समझना।

14वें अध्याय का महत्व:

यह अध्याय यह सिखाता है कि संसार में हर व्यक्ति के स्वभाव और कर्म त्रिगुणों के अधीन होते हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिए इन गुणों के प्रभाव को समझना और इनसे ऊपर उठना जरूरी है।

निष्काम कर्म, आत्मसंयम, और भक्ति से व्यक्ति गुणों के बंधन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

निष्कर्ष:

जो व्यक्ति त्रिगुणों के प्रभाव को पहचानकर उनसे ऊपर उठता है, वह गुणातीत कहलाता है। ऐसा व्यक्ति भगवान का प्रिय होता है और मोक्ष प्राप्त करता है।

अध्याय १५: पुरुषोत्तम योग (136-138)

इस अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने जीवन के मूलभूत सिद्धांतों, मनुष्य योनि के महत्व, आत्मा के संस्कार, और परमात्मा के सर्वव्यापी स्वरूप का वर्णन किया है। यह अध्याय यह सिखाता है कि सब कुछ भगवान का है और उसी में समाहित है।

मुख्य सारांश

1. मनुष्य योनि का महत्व:

केवल मनुष्य योनि को कर्म योनि कहा गया है, क्योंकि मनुष्य को ही कर्म कर मोक्ष प्राप्त कर सकने का अधिकार है।

अन्य योनियां (देव योनि, निम्न योनि) मनुष्य योनि में किए गए कर्मों का फल होती हैं।

उच्च योनि (देव योनि): अच्छे कर्मों का फल।

मध्यम योनि (मनुष्य योनि): कर्म करने और फल प्राप्त करने की स्थिति।

निम्न योनि (पशु आदि): बुरे कर्मों का परिणाम।

2. आत्मा और संस्कार: जीवनभर के कर्म आत्मा पर संस्कार के रूप में अंकित हो जाते हैं। अगले जन्म में आत्मा उन्हीं संस्कारों के अनुसार व्यवहार करती है। व्यक्ति का मूल स्वभाव नहीं बदलता, भले ही वह अच्छे कर्म करने लगे।

3. परमात्मा का स्वरूप:

भगवान हर प्राणी में जीवात्मा के रूप में स्थित हैं।

सभी इंद्रियों (कान, आंख, त्वचा, जीभ, नाक) के माध्यम से भगवान ही हर अनुभव का उपभोग करते हैं।

भगवान(परम उर्जा) कहते हैं:

"मैं ही सूरज की रोशनी और वर्षा का कारण हूं।"

"मैं ही अन्न उगाता हूं, खाता हूं, और पचाता हूं।"

"स्मृति, ज्ञान, तर्कशक्ति, और विश्लेषण शक्ति – ये सभी मुझसे उत्पन्न होते हैं।"

4. सबकुछ भगवान को अर्पण करना:

भगवान हर कार्य के पीछे कारण और परिणाम हैं। इसीलिए हर कर्म भगवान को अर्पित करने की भावना से करना चाहिए।

15वें अध्याय का महत्व:

यह अध्याय आत्मा के संस्कार और उसके प्रभाव को समझने का मार्गदर्शन देता है। भगवान की सर्वव्यापकता को पहचानने और अपनी सीमितता को समझने पर जोर देता है।

"सबकुछ भगवान**(परम उर्जा**) का है, और उसी को समर्पित करना ही मोक्ष का मार्ग है।"

निष्कर्ष:

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मनुष्य के व्यक्तित्व का आधार (स्मृति, ज्ञान, तर्क, और विश्लेषण शक्ति) भगवान से उत्पन्न है। सबकुछ भगवान का है, और उन्हें अर्पित करने की भावना से कर्म करना ही पुरुषोत्तम योग है।

अध्याय १६: देवासुर सम्पद विभाग योग (139-142)

इस अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने मनुष्य के दो प्रकार के स्वभावों का वर्णन किया है—देवीय (पवित्र) और आसुरी (अपवित्र)। इन दोनों स्वभावों के गुण, उनका प्रभाव, और उनसे मुक्ति के उपाय बताए गए हैं।

मुख्य सारांश

1. देवीय संपत्ति और उसके गुण:

देवीय गुण व्यक्ति को मोक्ष की ओर ले जाते हैं। ये गुण इस प्रकार हैं:

निर्भयता: मन में किसी भी प्रकार का डर न होना।

अंतःकरण की शुद्धता: मन, वचन, और कर्म से पवित्रता।

ज्ञान प्राप्ति की एकाग्रता

दानशीलता और इंद्रियों का संयम।

सत्य: कथनी और करनी में समानता।

अहिंसा और क्षमाशीलता।

त्याग की भावना और मानसिक शांति।

दया भाव और अहंकार रहित आचरण।

पवित्रता: आचरण में स्वच्छता।

द्वेष और क्रोध से बचना।

निष्कर्ष: देवीय गुण व्यक्ति को मुक्ति और शांति की ओर ले जाते हैं।

2. आसुरी संपत्ति और उसके लक्षण:

आसुरी गुण व्यक्ति को अधोगति की ओर ले जाते हैं। ये गुण इस प्रकार हैं:

अशुद्धता और झूठ: सच और धर्म के मार्ग से दूर रहना।

पापी प्रवृत्ति: क्या करना उचित है और क्या अनुचित, इसका ज्ञान न होना।

अहंकार और क्रूरता।

भोग-विलास: जीवन का उद्देश्य केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति मानना।

असीम इच्छाएं और असंतोष।

दिखावा: यज्ञ और दान भी केवल अपनी श्रेष्ठता दिखाने के लिए करना।

दूसरों की निंदा: हर समय दूसरों की बुराई में लीन रहना।

निष्कर्ष: आसुरी गुण व्यक्ति को बार-बार निम्न योनियों में जन्म लेने पर मजबूर करते हैं।

3. काम, क्रोध, और लोभ:

काम: किसी भी प्रकार की असीमित इच्छाएं।

क्रोध: इच्छाएं पूरी न होने पर उत्पन्न गुस्सा।

लोभ: इच्छाएं पूरी होने पर भी संतोष न होना।

ये तीनों नरक के द्वार हैं।

जो इनसे मुक्त रहता है, वही शांति और मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

महत्वपूर्ण शिक्षाएं: 1. देवीय गुणों को अपनाओ: सभी देवीय गुणों को अपनाने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन इनमें से अधिकतर गुणों को आत्मसात करने का प्रयास करना चाहिए।

2. आसुरी गुणों से बचो: आसुरी गुणों को पहचानकर धीरे-धीरे उनका त्याग करना चाहिए।

3. शास्त्रों का पालन: जब संदेह हो कि क्या उचित है और क्या अनुचित, तब शास्त्रों की शरण में जाएं। शास्त्रों का पालन करने से ही मोक्ष संभव है।

निष्कर्ष:

देवीय संपत्ति व्यक्ति को मुक्ति और शांति की ओर ले जाती है, जबकि आसुरी संपत्ति उसे अधोगति और अज्ञान की ओर धकेलती है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि काम, क्रोध, और लोभ से बचकर, शास्त्रों के अनुसार चलने वाला व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

अध्याय १७: श्रद्धात्रय विभाग योग (143-148)

इस अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन के सवाल का उत्तर देते हुए श्रद्धा, यज्ञ, तप और दान के तीन प्रकारों (सात्विक, राजसिक और तामसिक) का वर्णन किया है। इसके अनुसार, मनुष्य की श्रद्धा उसके स्वभाव के अनुरूप होती है और वह अपने कर्मों और आचरण के आधार पर फल प्राप्त करता है।

मुख्य सारांश

1. श्रद्धा के तीन प्रकार:

सात्विक श्रद्धा: सत्य, पवित्रता, और निष्काम भावना से प्रेरित श्रद्धा।

राजसिक श्रद्धा: स्वार्थ, दिखावा, और फल की प्राप्ति के लिए श्रद्धा।

तामसिक श्रद्धा: अज्ञान, क्रूरता, और हानिकारक उद्देश्यों से प्रेरित श्रद्धा।

निष्कर्ष: मनुष्य की श्रद्धा उसके स्वभाव के गुणों (सत्व, रज, और तम) के आधार पर होती है।

2. यज्ञ (हवन/पूजा) के तीन प्रकार:

सात्विक यज्ञ:फल की इच्छा किए बिना, कर्तव्य भावना से किया गया यज्ञ। शास्त्रों के विधि-विधान के अनुसार होता है।

राजसिक यज्ञ:किसी लाभ या दिखावे के लिए किया गया यज्ञ। इसमें स्वार्थ की भावना होती है।

तामसिक यज्ञ:शास्त्र-विधि का पालन न करना। बिना श्रद्धा और अशुद्ध तरीके से यज्ञ करना।

3. तप (शारीरिक, वाणी और मानसिक तप):

(क) तप के तीन स्तर:

शारीरिक तप:देवताओं, गुरु, और ज्ञानियों का सम्मान करना। पवित्रता, अहिंसा और ब्रह्मचर्य का पालन।

वाणी का तप:ऐसी वाणी बोलना जो सत्य, प्रिय, और हितकारी हो। कठोर शब्दों से बचना।

मानसिक तप:मन में प्रसन्नता, शांति, और पवित्रता बनाए रखना। ध्यान, संयम, और सकारात्मक सोच।

(ख) तप के तीन प्रकार:

सात्विक तप:कर्तव्य भावना से, बिना फल की इच्छा के किया गया तप।

राजसिक तप:प्रशंसा, सम्मान, और स्वार्थ के लिए किया गया तप।

तामसिक तप:किसी को नुकसान पहुंचाने, दिखावे, या बुरे उद्देश्यों से किया गया तप।

4. दान (सहायता) के तीन प्रकार:

सात्विक दान:कर्तव्य भावना से, योग्य व्यक्ति को सही समय और स्थान पर दिया गया दान।

राजसिक दान:बदले में कुछ पाने की इच्छा से दिया गया दान। दिखावे और स्वार्थ की भावना से किया गया।

तामसिक दान:अपात्र को दिया गया दान, तिरस्कार के साथ दिया गया दान। ऐसी वस्तुएं देना जो स्वयं के लिए अनुपयोगी हों।

महत्वपूर्ण शिक्षाएं:

1. श्रद्धा और कर्म का महत्व:

श्रद्धा और भावना के आधार पर यज्ञ, तप और दान का फल तय होता है।

2. कर्तव्य भावना: हर कार्य बिना किसी फल की इच्छा के, कर्तव्य भावना से करना चाहिए।

3. शास्त्रों का पालन: संशय की स्थिति में हमेशा शास्त्रों को प्रमाण मानना चाहिए।

निष्कर्ष:

भगवान श्रीकृष्ण ने स्पष्ट किया कि श्रद्धा और भावना से प्रेरित कर्म ही जीवन में शांति, मोक्ष, और उच्च गति की ओर ले जाते हैं। इसलिए यज्ञ, तप, और दान हमेशा सात्विक भावना से, बिना स्वार्थ या फल की कामना के करना चाहिए।

अध्याय १८: मोक्षसन्यासयोग (149-160)

मुख्य सारांश:

1. त्याग और सन्यास का अर्थ

सन्यास: इच्छापूर्ति के लिए किए जाने वाले कर्मों का त्याग।

त्याग: कर्म के फल की आसक्ति का त्याग।

भगवान कृष्ण ने कर्मों का त्याग करने की बजाय, यज्ञ, दान, और तप जैसे आवश्यक कर्मों को करने और उनके फल की आसक्ति छोड़ने को सर्वोत्तम बताया है।

2. त्याग के तीन प्रकार

सात्विक त्याग: फल की इच्छा का त्याग।

राजसिक त्याग: कर्म के पाप-पुण्य के भय से कर्म का त्याग।

तामसिक त्याग: कर्तव्य कर्मों का त्याग।

3. कर्म के पाँच स्तंभ

शरीर, आत्मा (कर्त्ता), इंद्रियां (कारण), इंद्रियों की चेष्टाएं, और भाग्य।

इन पाँचों के अनुकूल होने पर ही कर्म सिद्ध होता है।

4. कर्तापन का अहंकार त्यागने का महत्व

भगवान कहते हैं कि व्यक्ति को स्वयं को उनका उपकरण मानना चाहिए।

ऐसा व्यक्ति कर्म करने पर भी पाप-पुण्य के बंधन से मुक्त रहता है।

5. ज्ञान, कर्म, और कर्ता के प्रकार

ज्ञान:

सात्विक: सभी प्राणियों में एक ही आत्मा को देखना।

राजसिक: विभिन्न प्राणियों को अलग-अलग मानना।

तामसिक: आत्मा का अस्तित्व न मानना।

कर्म:

सात्विक: बिना फल की इच्छा के किया गया कर्म।

राजसिक: लाभ पाने की इच्छा से किया गया कर्म।

तामसिक: बिना विचार, आलस्य, या नुकसान पहुँचाने के लिए किया गया कर्म।

कर्ता:

सात्विक: निःस्वार्थ, उत्साही, और धैर्यवान।

राजसिक: लाभ की लालसा से प्रेरित।

तामसिक: आलसी, कपटी, और दूसरों को हानि पहुँचाने वाला।

6. बुद्धि और धीरता के तीन प्रकार

सात्विक बुद्धि: धर्म-अधर्म और कर्तव्य-अकर्तव्य का सही निर्णय।

राजसिक बुद्धि: वास्तविकता को आधा समझना।

तामसिक बुद्धि: उल्टा सोचने वाली।

सात्विक धीरता: मन, प्राण, और इंद्रियों को स्थिर रखना।

राजसिक धीरता: फल की लालसा में धीर बने रहना।

तामसिक धीरता: आलस्य, निद्रा, और शोक से घिरे रहना।

7. सुख के तीन प्रकार

सात्विक सुख: आत्म-तत्व के ज्ञान से प्राप्त, शुरुआत में कठिन पर अंत में आनंदमय।

राजसिक सुख: इंद्रिय भोगों से प्राप्त, शुरुआत में आनंददायक पर अंत में विषमय।

तामसिक सुख: आलस्य, निद्रा, और नशे से प्राप्त, भ्रम में डालने वाला।

8. वर्ण और धर्म का महत्व

चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) अपने गुण और कर्म के अनुसार समाज के आवश्यक अंग हैं। अपने स्वाभाविक कर्म को बिना फल की आसक्ति के करने से मोक्ष प्राप्त होता है।

9. कर्म फल से मुक्त होने का उपाय

अपने सारे कर्म भगवान को समर्पित करना। भगवान को अपना कर्ता मानते हुए अपने कर्म करना।

10. सार्वजनिक ज्ञान का महत्व

गीता के ज्ञान को सुपात्र को देना।

गीता ज्ञान को फैलाने वाले व्यक्ति को भगवान का प्रिय माना गया है।

11. संजय का निष्कर्ष

जहां भगवान कृष्ण और अर्जुन (कर्तव्यपरायणता और मार्गदर्शन) हैं, वहीं विजय, समृद्धि, और नीति है।

महत्व:

यह अध्याय जीवन में कर्म और धर्म का संतुलन सिखाता है। यह त्याग के वास्तविक अर्थ को समझाकर हमें अपने कर्तव्यों के प्रति प्रेरित करता है।

यह हमें सिखाता है कि कर्म के प्रति आसक्ति से बचते हुए भी कर्तव्य करना ही सही मार्ग है।

व्यक्ति को अपने गुण और स्वभाव के अनुसार कार्य करते हुए समाज में योगदान देना चाहिए। यह अध्याय जीवन के हर क्षेत्र में संतुलन, विवेक, और समर्पण का महत्व समझाता है।

प्रभाव:

यह अध्याय हमें यह विश्वास दिलाता है कि कर्म का फल भगवान पर छोड़कर अपने कर्तव्य के मार्ग पर चलने से मोक्ष संभव है। यह ज्ञान आत्मशुद्धि, समाज सेवा, और व्यक्तिगत विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता: विस्तृत विश्लेषण (162-165)

अध्याय १: अर्जुन विषाद योग

यह जो गीता का पहला अध्याय है, इसे अर्जुन विषाद योग भी कहते हैं। अर्जुन जो है, वह डिप्रेशन में चला गया एकदम। अब यह जो पहला अध्याय है, इसे गीता की भूमिका भी माना जाता है। अब गीता के इस पहले अध्याय में क्या होता है, वह मैं आपको बताता हूं। बीच-बीच में जो चीज भी मुझे थोड़ी सी ज्यादा महत्वपूर्ण लगती है, वह भी मैं आपको बताऊंगा।

अब शुरुआत जो होती है, वह यह कि धृतराष्ट्र जो हैं, वह संजय से पूछते हैं कि बताओ इस वक्त क्या चल रहा है। संजय असल में धृतराष्ट्र के सारथी थे और इन्हें व्यास जी ने दिव्य दृष्टि प्रदान की थी, ताकि युद्ध का आंखों देखा हाल में धृतराष्ट्र को बता सकें। अब संजय बताना शुरू करते हैं, तो युद्ध में यह हो रहा है कि दुर्योधन द्रोणाचार्य के पास जाता है और उनसे कहता है कि देखिए साहब, आपके महान शिष्य महाराज द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने कितनी सुंदर व्यूह रचना करी है, कितनी शानदार सेना खड़ी की है। अब यह जो है, यह असल में तंज है, यह एक व्यंग है कि जिस व्यक्ति को आपने अपना शिष्य बनाया था और जिसको आपने सारी विद्याएं सिखाई थीं, वह आज आपके सामने सेना लेकर खड़ा हुआ है।

अब खड़े तो पांडव भी हैं और वह भी द्रोणाचार्य के शिष्य थे। तो धृष्टद्युम्न के बारे में यह तंज क्यों कसा जा रहा है?

क्या हुआ था कि द्रोणाचार्य और महाराज द्रुपद में थोड़ी सी लड़ाई वगैरह हो गई थी और द्रोणाचार्य ने द्रुपद का बड़ा अपमान किया था। हालांकि द्रुपद ने द्रोणाचार्य का अपमान उससे बहुत पहले कर दिया था, पर जब द्रुपद का अपमान हुआ, तो उसने यज्ञ किया और उसको दो संतानों की प्राप्ति हुई। एक थे धृष्टद्युम्न और दूसरी थीं द्रौपदी। अब जो यज्ञ किया गया था, किया ही इसीलिए गया था कि ऐसे पुत्र की प्राप्ति हो जो द्रोण का वध कर सके।

और द्रोणाचार्य को यह मालूम भी था कि धृष्टद्युम्न का जन्म हुआ ही इसलिए है कि वह उनका वध कर सके, फिर भी उन्होंने उसको शिक्षा दी। और इसी वजह से दुर्योधन जो है, वह द्रोणाचार्य का मखौल उड़ा रहा है, उन पर तंज कस रहा है। साथ ही साथ दुर्योधन यह भी बताता है कि हमारी सेना में और उनकी सेना में कौन-कौन से शूरवीर हैं।

पर जो बात कहने के लिए दुर्योधन द्रोणाचार्य के पास गया था, वह बात यह थी कि दुर्योधन द्रोणाचार्य से यह कहता है कि आप सब युद्ध पर ध्यान देना, लेकिन आप इस बात पर ध्यान देना कि भीष्म पितामह को कुछ भी न हो। यानी दुर्योधन द्रोणाचार्य से विशेष रूप से बोलता है कि आप सब तरफ से केवल भीष्म पितामह की रक्षा करें। पर भीष्म पितामह तो खुद ही बहुत बड़े महारथी थे। उनको रक्षा की क्या जरूरत थी? ऐसा इसलिए था क्योंकि पांडवों की सेना में शिखंडी था। अब

कुछ किताबों में शिखंडी को कभी शिखंडी बोला जाता है, कभी शिखंडिनी। कुछ किताबों में इनको महिला बोला गया है और कुछ किताबों में इनको किन्नर बोला गया है।

तो भीष्म पितामह की शपथ यह थी कि वह कभी भी स्त्री पर या किसी नपुंसक पर शस्त्र नहीं उठाएंगे। और यही एक चिंता की वजह थी दुर्योधन के सामने कि अगर पांडवों ने भीष्म पितामह के सामने शिखंडी को खड़ा कर दिया, तो भीष्म पितामह तो शस्त्र छोड़ देंगे। और फिर अर्जुन भीष्म पितामह को बहुत आराम से मार डालेगा। और आगे जाकर यह चीज युद्ध में हुई भी।

पर इसीलिए दुर्योधन जो है, द्रोणाचार्य के पास जाकर यह चीज बोलता है कि भाई, कुछ भी हो जाए, आप भीष्म पितामह की बिल्कुल रक्षा करना। अब इतनी बात चल ही रही थी कि भीष्म पितामह ने अपना शंख उठाया और शंख को बजा दिया और युद्ध की घोषणा कर दी। सबसे पहले शंख जो है, वह भीष्म पितामह ने बजाया था।

और उनके बाद श्रीकृष्ण ने बजाया था, और उनके बाद फिर सभी जो बड़े-बड़े महारथी थे, सभी ने अपना शंख बजाया और युद्ध की शुरुआत की घोषणा की। अब जैसे ही सब शंख बजा के रुके, वैसे ही अर्जुन ने कृष्ण जी से कहा कि मैं यह देखना चाहता हूं कि हमारी तरफ से और उनकी तरफ से कौन-कौन से लोग हैं जिनसे हमें युद्ध लड़ना है। इसलिए आप रथ को बिल्कुल बीचों-बीच ले जाकर खड़ा करो। और जैसे ही उस रथ को कृष्ण जी बीच में ले जाकर खड़ा करते हैं, यहां से इस अध्याय का मुख्य विषय शुरू

होता है। जैसे ही अर्जुन देखता है कि जिनसे वह युद्ध लड़ने आया है, उनमें से एक तो उसके पितामह हैं, एक द्रोणाचार्य हैं। सभी उसके गुरु लोग हैं, सभी उसके भाई हैं, मित्र हैं। मतलब सभी लोग किसी न किसी तरह से उससे जुड़े हुए हैं।

और जैसे ही उनको वह देखता है, वैसे ही वह बोल देता है कि साहब, इन लोगों को देख कर, जो कि खुद के मेरे सगे-संबंधी हैं, इनको देखकर मेरे हाथ कांप रहे हैं, मुंह सूखता चला जा रहा है, चमड़ी मेरी जल रही है, हाथ से गांडीव खिसकता जा रहा है और मैं खड़ा होने में भी समर्थ नहीं पा रहा हूं अपने आप को।

यानी वह अर्जुन, जो आज से पहले बहुत बार भयानक नरसंहार कर चुका है, वह यहां जब अपने लोगों को देखता है, तो बिल्कुल गंभीर डिप्रेशन में आ जाता है। और बोलता है कि साहब, मुझे तो यहां पर एक भी अच्छा लक्षण दिखाई नहीं दे रहा है।

जो सभी सगे-संबंधियों को, इतने प्रिय जनों को मारकर जो राज्य प्राप्त हो, ऐसे राज्य की मुझे कोई इच्छा नहीं है। यह सभी मेरे प्रियजन हैं, सगे-संबंधी हैं। इन लोगों को मारकर मुझे स्वर्ग का सिंहासन भी नहीं चाहिए, धरती के टुकड़े की तो बात ही क्या है।

और बजाय इसके कि मैं उनको मार डालूं, उससे अच्छा तो यही होगा कि यही लोग मुझे मार डालें। इतना बोलता है और अपने रथ के पिछले हिस्से में

जाकर बैठ जाता है। और भगवान श्रीकृष्ण, जो कि विश्व के सबसे बेहतरीन मनोवैज्ञानिक हैं, वह पूरे अध्याय के दौरान चुपचाप रहते हैं, कुछ भी नहीं बोलते। जितना भी अर्जुन बोलता है, बस वे सुनते रहते हैं।

पहला अध्याय समाप्त होता है।

अर्जुन

अध्याय २ : सांख्य योग (ज्ञान योग)

यह है गीता का दूसरा अध्याय, और इसे सांख्य योग या फिर ज्ञान योग भी कहते हैं। जिन टॉपिक्स के बारे में इस अध्याय में बात की गई है, उनमें से एक तो है आत्मा की अमरता, दूसरा धर्म और कर्तव्य क्या है, इस चीज के बारे में बताया गया है। तीसरी चीज जो बताई गई है, वह है कि मूल स्वभाव के अनुसार व्यक्ति का धर्म और उसका कर्तव्य क्या होता है। चौथी चीज जो समझाई गई है, वह है कि कर्म योग क्या होता है और पांचवी और आखिरी चीज, जो इस अध्याय में बात की गई है, वह है कि स्थितप्रज्ञ यानी स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति के क्या लक्षण होते हैं।

पहले अध्याय में तो कृष्ण जी कुछ भी नहीं बोलते; केवल अर्जुन ही बोलता रहता है और वह यह बताता है कि वह किस तरह से बिल्कुल डिप्रेशन में आ गया है। अर्जुन की पूरी बात सुन लेने के बाद कृष्ण जी दूसरे श्लोक से बोलना शुरू करते हैं। अब कृष्ण जी बोलना शुरू करते हैं कि इस विषम अवसर पर यह अज्ञान तुम्हें कहां से प्राप्त हुआ! अब विषम अवसर का क्या

मतलब है? विषम अवसर से मतलब यह है कि देखो, दोनों तरफ अब सेनाएं आकर खड़ी हो गई हैं और अब तुम कह रहे हो कि मैं अपने सगे-संबंधियों से युद्ध नहीं करूंगा। अब विषम परिस्थिति इस तरह से है कि जब हम लोग युद्ध की तैयारी कर रहे थे, तब तुम्हें नहीं मालूम था क्या कि तुम्हें अपने सगे-संबंधियों से ही युद्ध करना पड़ेगा। और जिस समय दुर्योधन ने कहा था कि बिना युद्ध के सुई की नोक जितनी भूमि भी नहीं देगा, अगर उस समय हम यह कहते कि चलो ठीक है, तुम कुछ नहीं दे रहे हो, तुम हमें राज नहीं दे रहे हो, तो ठीक है, हम प्रजा बनकर ही रहेंगे। अगर उस वक्त हम यह कहते, तो वह त्याग की श्रेणी में आ जाता। पर अब अगर हम युद्ध से पीछे हटे, तो पूरी दुनिया, अर्जुन, तुम्हें नपुंसक और कायर कहेगी।

अर्जुन बोलता है, "पर फिर भी भूमि के एक छोटे से टुकड़े के लिए अपने सगे-संबंधियों को मारना कहां तक उचित है? क्या यह सही बात है? और माधव, जिन लोगों को आपने मारा था, वे तो वाकई में दुष्ट थे, पर यह सभी तो मेरे सगे-संबंधी हैं। यह भीष्म पितामह, ये द्रोणाचार्य, यह सभी मेरे लिए पूजनीय हैं। इनको मारने की बजाय मैं भीख मांगकर गुजारा करना ज्यादा पसंद करूंगा। इन लोगों को अगर मैं मार भी देता हूं, तो मैं उसके बाद खुद भी जीना नहीं चाहता। और आप कह रहे हैं युद्ध करो! अब इस चीज की वजह से मेरा दिमाग जो है, बिल्कुल भ्रमित हो गया है। बिल्कुल समझ में ही नहीं आ रहा है कि क्या करना चाहिए। तो इस वक्त आप मुझे यह बताइए कि

मेरा धर्म क्या है और इस वक्त मेरे लिए क्या करना उचित है, वह बताइए और मैं वह करूंगा।"

अब अर्जुन ने इतना बोल तो दिया, पर असल में वह निश्चय कर चुका है कि चाहे कुछ भी हो जाए, युद्ध नहीं करूंगा। इतना सुनने के बाद कृष्ण जी जो कहना शुरू करते हैं, यहां से इस श्लोक से गीता का ज्ञान शुरू होता है। कृष्ण जी कहते हैं, "तू विद्वान नहीं है और तू विद्वानों के जैसी बात कर रहा है।" यानी तू बातें तो विद्वानों की तरह कर रहा है, पर असल में तू विद्वान नहीं है, क्योंकि जो सचमुच के विद्वान हैं, वे न मरे हुए का शोक करते हैं, न जीवित लोगों का शोक करते हैं। और ऐसा इसलिए क्योंकि वे यथार्थ जानते हैं। अब श्लोक में मैंने तो "विद्वान" बोला है, पर श्लोक के अंदर जो शब्द इस्तेमाल हुआ है वह है "पंडित।" और पंडित शब्द का अर्थ क्या होता है, उसको समझ लीजिए।

पंडित वह व्यक्ति होता है, जिसने शास्त्रों का मर्म समझ लिया है। यानी उसे शास्त्रों का सार समझ में आ चुका है। जिस व्यक्ति का विवेक जागृत हो चुका है, जिस व्यक्ति के अंदर उचित और अनुचित का फर्क करने की समझ पैदा हो गई है, उस व्यक्ति को पंडित कहा जाता है। यानी जब भी पंडित शब्द इस्तेमाल होता है, इसका तात्पर्य केवल यही होता है कि वह व्यक्ति जिसने शास्त्रों का तात्पर्य समझ लिया है, वही व्यक्ति पंडित है।

कृष्ण जी कहते हैं कि जिन्हें तू भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य समझ रहा है, यह केवल देह के बंधन से बंधी हुई आत्माएं हैं। यह वह देह नहीं हैं, जिन्हें तू

अपना रिश्ता समझ रहा है, यानी सगे-संबंधी समझ रहा है। यानी मुख्य चीज जो है वह आत्मा है, शरीर नहीं। और दूसरी चीज जो कृष्ण जी बताते हैं, वह है कि आत्मा अमर है और शरीर विनाशी है। यानी आत्मा को कोई नष्ट नहीं कर सकता और शरीर को कोई बचा नहीं सकता। और ऐसा इसलिए है क्योंकि आत्मा न तो जन्म लेती है और न ही मरती है। जिस तरह से मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नए वस्त्र पहन लेता है, उसी तरह से आत्मा जो है, वह जीर्ण शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण कर लेती है।

अब "जीर्ण" शब्द को समझ लीजिए। जीर्ण का वैसे तो सामान्य मतलब होता है वृद्ध शरीर। पर जैसा कि कहा जा रहा है, कि आत्मा जीर्ण शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण कर लेती है, तो फिर बच्चे क्यों मरते हैं? जवान आदमी क्यों मरता है? देखिए, जीर्ण शब्द से मतलब है वह व्यक्ति जिसने अपने कर्मों का फल भोग लिया है। फिर उसका शरीर जीर्ण हो जाता है। फिर उस शरीर में रहने की उसे आवश्यकता नहीं होती। तो आत्मा उस शरीर को छोड़ देती है। यह है "जीर्ण" का तात्पर्य।

इसका मतलब यह हुआ कि जब तक जितने भी लोग हैं, अपने कर्मों का फल भोग नहीं लेते, तब तक उनकी मृत्यु नहीं होगी। यानी जिन लोगों को तुम समझ रहे हो कि तुम उनको मार रहे हो, उन्हें तुम नहीं मार रहे हो। वे इसलिए मर रहे हैं, तुमसे युद्ध करते हुए, क्योंकि वे अपने कर्मों को भोग चुके हैं। और इसलिए अर्जुन, तुम मोह मत करो, तुम बस युद्ध करो।

और ऐसा इसलिए भी करो क्योंकि तुम्हारा धर्म जो है, वह तुम्हारा धर्म है— युद्ध करना। और जो अपने धर्म का पालन नहीं करता, उसका बड़ा अपयश होता है, बड़ी बदनामी होती है। और यह जो अपयश है, जो बदनामी है, अपकीर्ति जिसे कहते हैं, यह मृत्यु से भी बेकार है, मृत्यु से भी बदतर है। तो जो लोग आज तुम्हें बहुत ज्यादा वीर समझते हैं, अगर तुम युद्ध नहीं करोगे तो लोग तुम्हें कायर कहेंगे और तुम्हारा अपयश पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ता चला जाएगा। इसके विपरीत, अगर तुम युद्ध करते हो तो अगर जीते हो, तो राज करोगे, और अगर मृत्यु को प्राप्त होते हो, यानी वीरगति होती है, तो स्वर्ग लोक के अधिकारी होगे, स्वर्गवासी बनोगे। और इसलिए सुख-दुख, लाभ–हानि, जय–पराजय, सबको एक जैसा समझो और युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

अब यहां पर कृष्ण जी ने धर्म समझाया है। थोड़ा सा इसको मैं भी एक्सप्लेन कर देता हूं ताकि सभी को आसानी से समझ में आ जाए। देखिए, यहां पर धर्म से अर्थ रिलिजन नहीं है। धर्म से अर्थ है कर्तव्य—नियमों का पालन करना। यह चीज धर्म कही गई है। जो भी एक व्यक्ति का कार्य है, वही उसका धर्म है।

एक सवाल करता हूं आपसे। आप क्या हो? मान लेते हैं, आप एक स्टूडेंट हो। तो आपका कार्य क्या है? आपका कार्य है पढ़ाई करना। जो कार्य है, वही कर्तव्य है, और जो कर्तव्य है, वही धर्म है। यानी एक स्टूडेंट का धर्म पढ़ाई करना है। क्यों? क्योंकि यही उसका कर्तव्य है। अब श्लोक के हिसाब से

समझ लें तो धर्म जो है, वह कर्तव्य है, और कर्तव्य जो है, वही धर्म है। तो व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करना चाहिए। धर्म का पालन यानी कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

कर्तव्य क्या है? कर्तव्य वह है जो एक व्यक्ति के स्पेसिफिक कार्य हैं। और इस कार्य को जब करें, तो कामना को त्याग कर सफलता और असफलता को एक समान मानकर कार्य करना चाहिए। क्योंकि कामना के साथ किसी कर्म को करना नीच कर्म है।

अब कामना या आकांक्षा—इसका मतलब होता है एक्सपेक्टेशंस। यानी अगर आप बिना किसी एक्सपेक्टेशन के किसी काम को कर रहे हो, तो वह कर्म जो है, वह यज्ञ हो जाएगा।

अब यज्ञ से मतलब क्या होता है? यज्ञ से मतलब यह होता है कि जो कुछ भी काम करना है, उसे भगवान को समर्पित कर देना। और समर्पित करने का मतलब है कि "साहब, यह मेरा इनपुट था। ये मैं आपको समर्पित करता हूं। आपको जैसा भी अच्छा लगे, आप वैसा करना।" और इस तरह से कर्म करने को कर्म योग कहते हैं। और इस तरह से कर्म करने वाले व्यक्ति को कर्म योगी कहते हैं। और क्योंकि वह किसी भी प्रकार की कोई भी आकांक्षा नहीं रखता, किसी भी प्रकार की कोई भी एक्सपेक्टेशंस नहीं है उसकी, उस वजह से उसका कभी भी, मतलब क्योंकि वह किसी भी कर्म से कोई उम्मीद करता ही नहीं है, इसलिए उसकी उम्मीद कभी भी नहीं टूटती। क्योंकि उम्मीद नहीं टूटी, इसलिए उसका मन जो है, वह शांत हो जाता है। और जिसका मन शांत

हो जाता है, उसे मानसिक शांति प्राप्त हो जाती है। उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

अब इस श्लोक को समझ लीजिए। पूरे गीता का सार जो है, वह इस श्लोक में है। श्लोक है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। (2.47)

अगर इस श्लोक को बहुत ध्यान से समझें तो इस श्लोक में चार बातें कही गई हैं:

1. कर्म करना तेरे हाथ में है—कर्मण्येवाधिकारस्ते।

2. कर्म का फल किसी अन्य शक्ति के हाथ में है—फलेषु कदाचन।

3. तू कर्म करते समय फल की आशा मत कर।

4. फल छोड़ने का यह अर्थ नहीं होता कि तू कर्म करना ही छोड़ दे।

इस चीज को फिर से सुनो:

कर्म करना तेरे हाथ में है।

कर्म का फल किसी और के हाथ में है।

कर्म करते समय फल प्राप्ति की आशा मत कर।

और फल छोड़ने का अर्थ यह नहीं कि तू कर्म करना ही छोड़ दे।

इसका एक उदाहरण समझ लीजिए।

मान लीजिए एक लड़का है, वह IAS की तैयारी कर रहा है।

अब पहली चीज क्या थी?

पहली चीज थी—कर्म करना तेरे हाथ में है।

यानी तैयारी करने के अलावा और कुछ भी नहीं कर सकते। यानी आप मेहनत कर सकते हो और बहुत ज्यादा मेहनत कर सकते हो, पर मेहनत के अलावा कुछ भी नहीं कर सकते। पहली लाइन—कर्म करना तेरे अधिकार में।

दूसरी चीज—कर्म के फल देने का अधिकार किसी दूसरे व्यक्ति के हाथ में है। यानी क्वेश्चन पेपर जो है, कोई दूसरा आदमी बनाएगा और आंसर शीट जो है, कोई दूसरा व्यक्ति चेक करेगा। उसके बाद दो राउंड और होंगे। यानी तुम्हारे कर्म का फल देने की शक्ति किसी दूसरे के पास है।

तीसरी चीज—कर्म करते समय फल प्राप्ति की इच्छा मत करो।

मान लेते हैं, यह लड़के का चौथा अटेम्प्ट था IAS के एग्जाम का और उसने बहुत ही अच्छे तरीके से तैयारी की थी। पर यह भी तो हो सकता है कि किसी दूसरे व्यक्ति ने, जो कि IAS एग्जाम की तैयारी कर रहा था, उसने और भी अच्छे तरीके से तैयारी की हो। यानी जिसकी तैयारी ज्यादा अच्छी होगी, उसी का तो सिलेक्शन होगा। इसीलिए तुम फल प्राप्ति की इच्छा मत करो। क्योंकि तुम फल प्राप्ति की इच्छा करोगे, तो ऐसा हो सकता है तुम्हें बहुत ज्यादा निराशा मिले।

चौथी चीज—फल प्राप्ति की आशा नहीं रखने का यह मतलब नहीं होता कि तू कर्म करना ही छोड़ दे।

सारी चीजें होंगी। एक से बढ़कर एक बेहतरीन स्टूडेंट एग्जाम में बैठेंगे, जिन्होंने अपने सब्जेक्ट को पानी की तरह पी लिया। उनसे आगे बढ़ाने के लिए तुम्हें उनसे ज्यादा मेहनत करनी होगी। IAS का एग्जाम बहुत कठिन होता, पर इसका मतलब यह नहीं कि IAS एग्जाम की तैयारी ही नहीं की जाए।

दूसरा अध्याय समाप्त।

अध्याय ३: कर्म योग

देखिए, यह जो तीसरा अध्याय है, इसके अंदर कर्म योग के बारे में बताया गया है। कर्म योग क्या है? कर्म योग से मतलब है फल की इच्छा किए बिना लगातार कर्म करते चले जाना। इसे ही कर्म योग कहा जाता है।

दूसरी चीज जो इस अध्याय में बताई गई है वह यह कि फल की इच्छा बिल्कुल भी नहीं करनी चाहिए। और तीसरी चीज जो बताई गई है वह यह कि अपने मूल स्वभाव को समझकर अपना धर्म चुनना चाहिए।

अब तीसरा अध्याय शुरू करते हैं।

अर्जुन बोलता है, "भगवान, एक तरफ तो आप मानसिक शांति और बुद्धि को स्थिर रखने की बात करते हैं और दूसरी तरफ आप मुझे युद्ध जैसे भयंकर कर्म को करने के लिए कहते हैं। अब इस वजह से मुझे यह समझ में नहीं आ रहा कि मुझे क्या करना चाहिए। तो आप ही मुझे बताइए कि मुझे क्या करना चाहिए।"

अब श्रीकृष्ण बताना शुरू करते हैं। वे कहते हैं, "देखो, इस युग में दो प्रकार की आस्था है—एक ज्ञान योग और दूसरी कर्म योग।

ज्ञान योग से क्या मतलब है?

ज्ञान योग से मतलब है केवल ज्ञान प्राप्ति की इच्छा रखना और कर्म नहीं करना। कर्म योग, जैसा कि मैं पहले बता चुका हूं, निष्काम भावना से कर्म करते चले जाना और फल की इच्छा न करना।

अब इस चीज को थोड़ा समझते हैं।

एक व्यक्ति केवल ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश करता है और कर्म नहीं करता है, तो उसके ज्ञान का कोई फायदा नहीं है। क्योंकि उसके ज्ञान को कोई एप्लीकेशन (उपयोग) तो मिला ही नहीं।

भाई, अगर आपके पास ज्ञान है और आप उसे अप्लाई नहीं कर रहे हो, उपयोग नहीं कर पा रहे हो, या उपयोग करना ही नहीं चाहते, तो उस ज्ञान का फायदा क्या?

इसी तरह से एक दूसरा व्यक्ति है जो केवल कर्म करने में यकीन करता है और ज्ञान प्राप्ति की कोई इच्छा नहीं रखता।

पर आप खुद सोचो, अगर कोई व्यक्ति कर्म करते हुए ज्ञान प्राप्त करे या ज्ञान प्राप्त करते हुए कर्म करे, तो उसकी प्रोडक्टिविटी कितनी ज्यादा होगी!

अब इस चीज को और समझिए।

यदि केवल नॉलेज है और वर्क नहीं है, तो नॉलेज का कोई उपयोग नहीं होगा। पर अगर वर्क है और नॉलेज नहीं है, तो देर से ही सही पर रिजल्ट जरूर निकलेगा।

और इसीलिए भगवान कृष्ण ज्ञान योग और कर्म योग में से कर्म योग को श्रेष्ठ मानते हैं। वे यह भी कहते हैं कि कर्म करते हुए ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और ज्ञान प्राप्त करते हुए कर्म करना चाहिए।

अब इस चीज को भी समझिए।

अर्जुन युद्ध नहीं करना चाहता, इसलिए वह ज्ञान योग की तरफ जा रहा है।

पर कृष्ण जी जानते हैं कि अर्जुन का मूल स्वभाव एक सैनिक का है।

अभी भले ही उसे अपने सगे-संबंधी लोग दिख रहे हैं, पर थोड़े समय के बाद, जैसे ही उसका मूल स्वभाव जागृत होगा, वह युद्ध करने के लिए प्रवृत्त हो जाएगा। इसलिए अर्जुन के अंदर जो वैराग्य की भावना जागृत हुई है, वह थोड़े समय के अंदर ही खत्म हो जाएगी।

और इसलिए कृष्ण जी कहते हैं अर्जुन से, "अपने कर्तव्य का त्याग करके अगर तुम संन्यास ले लोगे, तो लोग तुम्हें मूर्ख और ढोंगी कहेंगे।

पर अगर तुम निष्काम भावना से अपने धर्म का पालन करोगे, तो तुम एक महान व्यक्ति कहलाओगे।"

अब यहां पर इस चीज के बारे में थोड़ा विचार करते हैं।

युद्ध करना अच्छा है या संन्यास लेना अच्छा है?

क्या चीज अच्छी है?

भाई, युद्ध में लाखों लोग मरते हैं, हजारों लोग मरते हैं। इससे अच्छा तो यह है कि कोई दूसरा व्यक्ति संन्यास ले ले। वो ज्यादा अच्छा है।

भाई, बजाए इसके कि अर्जुन हजारों-लाखों लोगों को मारे, उससे अच्छा वह संन्यास ले ले। कितनी अच्छी बात है।

पर इस चीज को थोड़ा अलग तरीके से सोचिए।

मान लीजिए, भारत का कोई सैनिक देश के दुश्मनों को मारने के लिए गया और वहां जाकर उसने कहा, "यार, इतने लोगों को क्यों मारूं? कितनी बुरी बात है। यह तो पाप की बात है।" और उसने संन्यास ले लिया।

ऐसा सैनिक मूर्ख और ढोंगी कहलाएगा। हम उसे कायर और नपुंसक भी कहेंगे।

अब यह क्यों?

क्योंकि सैनिक का धर्म और कर्तव्य जो है, वह युद्ध करना है।

इसलिए हे अर्जुन, व्यर्थ की बातें मत करो और युद्ध में ध्यान लगाओ।

ऐसा क्यों? क्योंकि पूरी सृष्टि का सारा व्यापार आदान-प्रदान से चलता है। और इस पूरे चक्र में कहीं भी बाधा आए, तो पूरा संतुलन जो है, वह खराब हो जाएगा।

अब जरा "व्यापार" शब्द को समझिए।

देखिए, अगर किसान अपना काम करना बंद कर दे, तो आपके पास फिर चाहे कितने भी पैसे क्यों न हों, आप खा नहीं पाएंगे। हो सकता है आप कहें कि मैं दूसरी जगह से मंगवा लूंगा खाना।

पर यहां तात्पर्य है, अगर पूरी दुनिया के किसान कह दें कि हम काम नहीं करेंगे, तो पूरी सृष्टि का व्यापार गड़बड़ा जाएगा। यानी हर व्यक्ति को उसका कर्म करते रहना बहुत ही ज्यादा जरूरी है। नहीं तो सृष्टि का जो संतुलन है, वह बिगड़ जाएगा।

और हे पथ, जो व्यक्ति सृष्टि चक्र के अनुसार यानी अपने धर्म के अनुसार अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, उसका जीना व्यर्थ है। भगवान श्रीकृष्ण यह भी कहते हैं कि यदि तुम्हारे पास सब कुछ है, यदि तुमने सारी चीजें प्राप्त कर ली हैं, तब भी तुम्हें अपना कर्म करते रहना चाहिए।

अब यहां पर कृष्ण जी महाराज जनक का उदाहरण देते हैं।

वे बताते हैं कि जनक ने राजकाज को ही लोक सेवा का माध्यम बना लिया था। यानी वे राजा तो थे, पर केवल और केवल अपनी प्रजा की सेवा करते

थे। वे प्रजा पर राज नहीं करते थे। और केवल इसी वजह से उन्हें परम सिद्धि मिल गई थी।

ऐसा क्यों हुआ?

क्योंकि राजा का जो सही काम होता है, वह प्रजा की सेवा करना ही होता है।

अगर कोई व्यक्ति अपने कार्य को बहुत अच्छे से करे, तो उसे परम सिद्धि मिल जाएगी।

अब वापस आते हैं।

अब कृष्ण जी एक बात और बताते हैं। "हे अर्जुन, तुम एक क्षत्रिय हो।

और क्षत्रिय का काम पापियों को मारना भी होता है और लोगों की रक्षा करना भी। क्योंकि तुम पापियों को मारने के लिए शस्त्र उठा रहे हो, ताकि लोगों का भला हो सके। तो अगर तुम पापियों की हत्या भी करते हो, तो भी तुम्हें पाप नहीं लगेगा। और इसलिए जो तुम्हारा कर्म है, उसे तुम्हें करना चाहिए।"

कृष्ण जी यह भी कहते हैं,

"हे पार्थ, तीनों लोकों में ऐसी कोई चीज नहीं है जो मेरी पहुंच से दूर हो। और मैं सभी प्रकार के कर्तव्यों से मुक्त हूं। पर फिर भी मैं कर्म करता रहता हूं।

क्योंकि यदि मैं सावधानीपूर्वक अपना कर्म न करूं, तो लोग मेरा अनुसरण करते हुए कर्म करना बंद कर देंगे।

और इससे हर तरफ अव्यवस्था फैल जाएगी, जिसका जिम्मेदार केवल मैं रहूंगा। और इसीलिए ज्ञानी लोगों का यह कर्तव्य होता है कि भले ही वे सभी प्रकार के कर्तव्यों से मुक्त हों, फिर भी लोगों के सामने सही उदाहरण स्थापित करने के लिए उन्हें लगातार सही कर्म करते रहना चाहिए।

यदि इतना कहने के बाद भी अर्जुन, तुझे समझ में नहीं आ रहा है, तो भक्ति योग का आश्रय ले। और अपने सभी कर्मों को मुझे समर्पित कर दे। और सारे पाप-पुण्य मुझ पर छोड़ दे।

क्योंकि अर्जुन, तुम्हारी मूल प्रवृत्ति एक सैनिक की है। इसलिए अपने मूल स्वभाव को दबाने की कोशिश मत करो। क्योंकि तुम्हारा मूल स्वभाव ही तुम्हारा धर्म निर्धारित करता है।

धर्म यानी कर्तव्य।कर्तव्य यानी वह चीज जो करनी चाहिए। उसे करो।

क्योंकि अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए यदि मृत्यु को भी प्राप्त हो जाते हो, तो भी स्वर्ग ही मिलेगा।

और इसीलिए, अर्जुन, निष्काम भावना से अपने कर्म यानी अपने कर्तव्यों का पालन करो।"

इसके साथ गीता का तीसरा अध्याय समाप्त होता है

अध्याय ४: ज्ञान, कर्म और संन्यास

अब जो गीता का चौथा अध्याय है, इसके अंदर ज्ञान, कर्म और संन्यास के बारे में बात की गई है। जैसा कि तीसरे अध्याय में भी भगवान कृष्ण ने समझाया था, बिना कर्म के ज्ञान व्यर्थ है और बिना ज्ञान के कर्म व्यर्थ है। इसलिए ज्ञान प्राप्त करते-करते कर्म करते रहना चाहिए और कर्म करते-करते ज्ञान प्राप्त करते रहना चाहिए, क्योंकि कोरा कर्म और कोरा ज्ञान दोनों अधूरे होते हैं।

इसके अलावा, जो दूसरी चीज इस अध्याय में बताई गई है, वह यह है कि कृष्ण जी अपने अवतार लेने का कारण समझाते हैं। और तीसरी चीज है—वर्ण व्यवस्था क्या होती है, यह भगवान कृष्ण ने अर्जुन को समझाया है। अब चौथा अध्याय शुरू करते हैं।

भगवान कृष्ण कहते हैं कि कर्म योग का जो रहस्य है, यह सबसे पहले मैंने सूर्य को समझाया था। सूर्य से फिर मनु के पास पहुंचा और फिर यह कर्म योग

का रहस्य बहुत समय के लिए लुप्त हो गया। वैसे तो यह कर्म योग हर किसी को बताने के योग्य नहीं है,

पर अर्जुन, तुम एक सुपात्र हो, इसीलिए मैं तुम्हें कर्म योग का रहस्य समझाऊंगा।

देखिए, कुरुक्षेत्र में अर्जुन से भी बड़े-बड़े ज्ञानी और योद्धा थे, पर फिर भी भगवान कृष्ण ने अर्जुन को ही कर्म योग का ज्ञान दिया, और किसी को नहीं। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए क्योंकि ज्ञान सुपात्र को ही दिया जाता है। कुपात्र को दिया हुआ ज्ञान नुकसान पहुंचाता है। यह एक महत्वपूर्ण बात है। दूसरी बात यह भी है कि मूर्ख व्यक्ति ज्ञान पाकर और भी ज्यादा मूर्ख हो जाता है।

अब यह तो भगवान की बात हुई। अर्जुन, जो युद्ध नहीं करना चाहता, अभी भी संदेह व्यक्त कर रहा है। वह बोलता है कि "सूर्य तो बहुत पहले से है और आप तो बहुत बाद में पैदा हुए हो। तो मैं यह कैसे मान लूं कि कर्म योग का रहस्य आपने सूर्य को समझाया था?"

तब भगवान कृष्ण कहते हैं, "देखो अर्जुन, मेरे और तुम्हारे बहुत से जन्म हो चुके हैं। मैं उन सभी जन्मों को जानता हूं, पर तुम नहीं जानते। इस बात को समझ लो कि जब-जब धर्म की अवनति होती है और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अपने आप को प्रकट करता हूं।"

यह एक कालजयी श्लोक है और पूरी दुनिया इस श्लोक को जानती है:

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (4-7)

साधु जनों की रक्षा के लिए और दुष्ट जनों के विनाश के लिए मैं युग-युग में प्रकट होता हूं:

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ (4-8)

और इसीलिए, अर्जुन, मेरे कर्म मेरे निजी लाभ-हानि के लिए नहीं होते, बल्कि लोगों के कल्याण के लिए होते हैं। और जो व्यक्ति मुझमें और अपने आप में कोई अंतर नहीं देखता, उसके सभी कर्म कर्म योग में आ जाते हैं क्योंकि वह इच्छा और कामनाओं से ऊपर उठ जाता है।

इसीलिए, इस प्रकार कर्म करने से जो भी व्यक्ति ऐसा करता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। कर्म करना मेन चीज नहीं है; कर्म करने के पीछे की भावना ही मेन चीज है। और जो व्यक्ति जिस भावना से मेरी शरण में आता है, मैं उसी भाव के अनुसार उसे स्वीकार करता हूं।

अब यहां तक बता चुकने के बाद भगवान कृष्ण गुण और कर्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था की बात करते हैं।

भगवान कहते हैं, "गुण और कर्म के अनुसार मैंने चार वर्ण बनाए हैं। हर व्यक्ति को उसके स्वभाव के अनुसार कर्म चुनने की आज़ादी दी हुई है।"

अब ज़रा इस चीज को समझ लीजिए। बहुत पहले, हर व्यक्ति की बुद्धि की परीक्षा की जाती थी। परीक्षा के रिजल्ट के आधार पर व्यक्ति को उसका कार्यक्षेत्र चुनने दिया जाता था। मतलब, एक प्रकार का एग्ज़ाम लिया जाता था और फिर उससे कहा जाता था, "तुम्हारी बुद्धि का लेवल यह है। तुम यह वाला काम करोगे तो बहुत अच्छा रहेगा।"

ऐसा क्यों किया जाता था? ऐसा इसलिए क्योंकि अगर हर व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार कार्य को चुनेगा तो वह बहुत अच्छे तरीके से उस काम को कर पाएगा। और अगर वह काम बहुत अच्छे से किया जाएगा, तो पूरे समाज को उससे फायदा होगा।

इस हिसाब से चार वर्ण बने:

1. ब्राह्मण—जो एजुकेशन और ज्ञान का काम करते थे।

2. क्षत्रिय—जो रक्षा का काम करते थे।

3. वैश्य—जो व्यापार और आर्थिक गतिविधियों का काम करते थे।

4. शूद्र—जो श्रम और सेवा का काम करते थे।

क्योंकि यह चारों कर्म लोग अपनी योग्यता के अनुसार करते थे, इसमें ऊंच-नीच की भावना लाना या किसी को ऊंचा या नीचा मान लेना गलत है।

कर्ण इस बात का बड़ा उदाहरण हैं। कर्ण बहुत योग्य होने के बावजूद लोग उन्हें सूतपुत्र कहते थे। उनके गुणों को स्वीकार नहीं किया जाता था। महाभारत काल के समय, लोग जन्म के आधार पर ऊंचा-नीचा मानने लगे थे। इसीलिए, भगवान ने यह स्पष्ट किया कि मैंने गुण और कर्म के आधार पर वर्ण बनाए हैं, जन्म के आधार पर नहीं।

अब भगवान अपने अवतार लेने का कारण भी समझाते हैं। वे कहते हैं, "मुझे कर्म फल की कोई इच्छा नहीं है, और इसलिए मेरे कर्म मुझे लिप्त नहीं करते।"

"लिप्त नहीं करते" का मतलब क्या है?

जब कोई बच्चा कुछ काम करता है, तो वह खेल की तरह करता है। उसे रिजल्ट की कोई परवाह नहीं होती। पर जैसे ही किसी खेल में हार-जीत की भावना आ जाए, वह खेल खेल नहीं रहता। उसमें रिजल्ट मुख्य हो जाता है।

भगवान के जितने भी कर्म होते हैं, वे एक बच्चे के खेल की तरह होते हैं। इसीलिए, भगवान के कर्मों को "लीला" कहा जाता है। जैसे कृष्ण लीला।

अब भगवान कहते हैं, "जो मेरी वास्तविकता को जान लेता है, वह कर्म के बंधन में नहीं फंसता।"

यहां "जानने" का मतलब है उस ज्ञान को अपने आचरण में उतारना। जो इस भावना के साथ कर्म करता है, वह कर्मों से होने वाले किसी भी प्रकार के दुख से मुक्त हो जाता है यानी उसे मोक्ष प्राप्त होता है।

मोक्ष की प्राप्ति का मतलब यह नहीं है कि तुम कर्म करना बंद कर दो। कर्म मोक्ष के मार्ग में बाधक नहीं होते; कर्म फल की इच्छा मोक्ष में बाधक होती है। इसलिए, अगर कुछ छोड़ना है, तो कर्म मत छोड़ो, कर्म फल की इच्छा छोड़ दो। जिसने कर्म फल की कामना छोड़ दी है, जिसका सुख किसी वस्तु या व्यक्ति पर निर्भर नहीं है, वह व्यक्ति सदा तृप्ति का अनुभव करता है। वह व्यक्ति, जो किसी से किसी प्रकार की आशा नहीं रखता और जिसने संग्रह

की वृत्ति त्याग दी है, केवल अपने जीवन को जीवित रखने के लिए कर्म करता है, वह कभी पाप का भागी नहीं होता।

इसलिए, हे अर्जुन, कर्म योग करते हुए अपने सभी संदेहों को ज्ञान से दूर कर और कर्म बंधन से मुक्त हो। जब कर्म बंधन से मुक्त हो जाएगा, तो मोक्ष की प्राप्ति निश्चित है।

हे अर्जुन, खड़े हो जाओ और अपने कर्तव्य का पालन करो।

इसके साथ गीता का चौथा अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय ५: कर्म संन्यास योग

गीता का जो पाँचवाँ अध्याय है, वह है कर्म संन्यास योग। अब इस कर्म संन्यास योग का अलग-अलग किताबों में अलग-अलग अर्थ दिया गया है। कुछ किताबों में इसका मतलब दिया गया है, कर्म से संन्यास यानी कर्म को त्याग देना। पर यदि कर्म त्याग की बात हो रही है, तो वह गीता की मूल भावना के ही विपरीत हो जाएगा। इसलिए, कर्म संन्यास योग का सही मतलब है: कर्मों के फलों का त्याग करना।

अब देखिए, पिछले अध्याय के आखिरी श्लोक में भगवान कृष्ण अर्जुन से स्पष्ट कहते हैं कि "तुम अपने संशय को छोड़ दो और जो तुम्हारा कर्तव्य है, उसका पालन करो," यानी युद्ध करो।

अब यदि अर्जुन उसी समय युद्ध करना शुरू कर देता, तो गीता उसी समय समाप्त हो जाती। पर यहाँ दो बातें हैं:

1. अर्जुन युद्ध नहीं करना चाहता; वह अभी भी इसके लिए तैयार नहीं है।

2. उसके मन में अभी भी संशय है कि युद्ध करना चाहिए या नहीं।

इसलिए, वह भगवान कृष्ण से सवाल करता है: "आप संन्यास की भी प्रशंसा करते हैं और कर्म योग की भी प्रशंसा करते हैं।

तो आप मुझे वह चीज़ बताइए, जो निश्चित रूप से मेरे लिए कल्याणकारी हो।"

भगवान कृष्ण उत्तर देते हैं: "देखो, संन्यास और कर्म योग, ये दोनों ही बेहतरीन चीज़ें हैं। पर फिर भी, संन्यास की तुलना में कर्म योग ही ज्यादा बेहतर है।"

अब जरा संन्यास शब्द को समझ लीजिए।

संन्यास का मतलब यह नहीं होता कि घर-बार, जमीन-जायदाद, धन-दौलत सब छोड़कर जंगल में चले जाओ।

संन्यास का मतलब होता है: राग-द्वेष और सभी प्रकार की आकांक्षाओं से मुक्त हो जाना। किसी से भी किसी भी प्रकार की कोई उम्मीद न रखना।

इसी के साथ भगवान यह भी कहते हैं:

"जिसका अंतःकरण शुद्ध है, जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया है, और जो सभी प्राणियों की आत्मा को अपनी आत्मा के समान मानता है, वह किसी दूसरे व्यक्ति को कष्ट दे ही नहीं सकता। क्योंकि वह तो सभी आत्माओं को अपनी आत्मा के समान ही मान रहा है।"

अब जो व्यक्ति इस प्रकार का ज्ञानी हो जाता है, उसके लिए ऊँचे से ऊँचा व्यक्ति और नीच से नीच व्यक्ति एक समान हो जाता है। श्लोक में कहा गया है कि इस प्रकार के ज्ञानी व्यक्ति के लिए: गाय, हाथी, कुत्ता, और चांडाल,

सभी एक जैसे जीव हो जाते हैं।

यानी ज्ञानी व्यक्ति ऊँचे और नीच व्यक्ति में कोई अंतर नहीं करता। वह किसी को छोटा मानकर उससे घृणा नहीं करता और किसी को ऊँचा मानकर उससे प्रेम भी नहीं करता।

क्यों? क्योंकि वह सभी को भगवान का बनाया हुआ मानता है और सभी को सम्मानपूर्वक स्वीकार कर लेता है। ऐसे ज्ञानी व्यक्ति के लिए सुख और दुख एक समान हो जाते हैं। उसे किसी भी चीज़ का मोह नहीं रहता। उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है। और उसे स्थाई शांति प्राप्त हो जाती है, यानी उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

यह ऐसा क्यों होता है?

क्योंकि वह किसी भी चीज़ की इच्छा नहीं करता। इसलिए, हे अर्जुन, "जो भी व्यक्ति अपने सभी कर्मों को भगवान को समर्पित कर देता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।"

इसके साथ गीता का पाँचवाँ अध्याय समाप्त होता है।
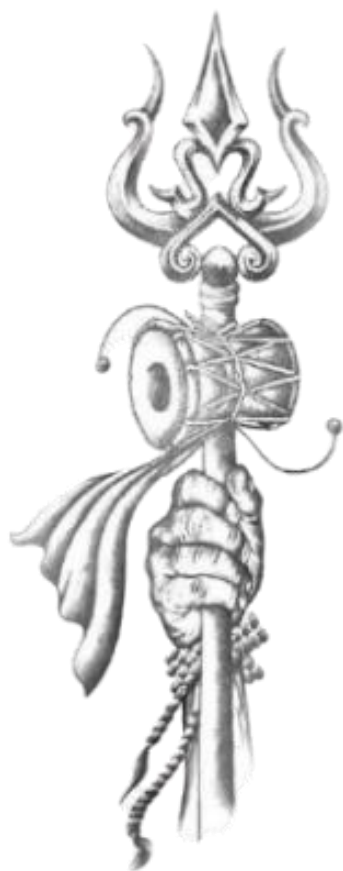
अध्याय ६: ध्यान योग

देखिए, अब यह जो छठा अध्याय है, इसके अंदर ध्यान योग के बारे में बात की गई है। इस अध्याय में भगवान ने बताया है कि असल में ध्यान लगाना किस तरह से चाहिए और क्यों लगाना चाहिए। और इसीलिए यह जो अध्याय है, यह स्टूडेंट्स के लिए बहुत ही ज्यादा महत्वपूर्ण है। इसे बहुत ही ध्यान से सुनिए। देखिए, हम सभी का मन जो होता है, इधर-उधर भटकता रहता है। मन भटकता है, यानी हमारा ध्यान भटकता रहता है। कभी इस चीज़ के बारे में सोच रहे हैं, कभी उस चीज़ के बारे में सोच रहे हैं। ऐसा होता है।

तो हमारे ध्यान को भटकने से बचाने के लिए उसे किसी एक चीज़ पर लगाना चाहिए। और वह चीज़ क्या है? वह चीज़ है "आत्म"। अब देखिए, कुछ किताबों में "आत्म" शब्द को "आत्मा" माना गया है, पर "आत्म" शब्द से मतलब "स्वयं" होता है और यही शब्द का अर्थ यहां पर सही है। यानी हमारे ध्यान को भटकने से बचाने के लिए हमें पूरा ध्यान स्वयं पर लगाना चाहिए।

अब भगवान इस चीज़ को कहते हैं कि जो व्यक्ति बिना फल की इच्छा के कर्म करता है, वही व्यक्ति कर्म योगी है, वही व्यक्ति ज्ञान योगी है, वही व्यक्ति संन्यासी है। पर अगर कोई निष्काम भावना से कर्म इसलिए कर रहा है कि उसे मोक्ष मिल जाए, तो इसका मतलब वह कर्मयोगी, ज्ञानयोगी या संन्यासी नहीं है। यानी फल की इच्छा के बिना कर्म करो, तभी मोक्ष मिलेगा। पर मोक्ष की इच्छा से अगर कर्मयोग करोगे तो वह कर्मयोग, कर्मयोग नहीं रह जाएगा।

दूसरी चीज़ जो यहां पर बताई गई है, वह यह है कि व्यक्ति खुद ही अपना दोस्त होता है और खुद ही अपना दुश्मन होता है। यानी आदमी चाहे तो उसे आगे बढ़ने से कोई नहीं रोक सकता। आदमी चाहे तो अपने आप को बर्बाद कर ले, कोई भी उसे नहीं रोक सकता। यानी कोई दूसरा व्यक्ति हमें आबाद या बर्बाद नहीं कर सकता। हमारे खुद के कर्म ही होते हैं, जो हमें आबाद या बर्बाद करते हैं। कर्म किसके लिए करते हैं? कर्म हम करते हैं खुद के लिए, यानी स्वयं के लिए। इसलिए व्यक्ति स्वयं ही अपना मित्र होता है और स्वयं ही अपना दुश्मन होता है।

अब देखिए, इस चीज़ को समझिए कि अगर किसी व्यक्ति को आभास हो जाए कि जो मैं कर रहा हूं, उसमें अभी तो सुख मिलेगा, पर आगे जाकर दुःख मिलेगा, तो फिर वह अच्छा साहित्य पढ़कर, अच्छी संगति में रहकर अपना भविष्य संवार सकता है। पर सोचिए कि अगर किसी व्यक्ति को आभास ही नहीं है इस चीज़ का, तो फिर उसका तो कुछ भी नहीं हो सकता। और जीवन में वही व्यक्ति परम आनंद प्राप्त करता है, जो आत्मजयी होता है।

आत्मजयी यानी जिसने खुद को जीत लिया है। अब इस चीज़ को थोड़ा समझ लीजिए। परम आनंद से यहां पर भगवान श्रीकृष्ण का अर्थ है मोक्ष। पर अगर कोई स्टूडेंट है, तो उसे परम आनंद किस चीज़ में प्राप्त होगा? भाई, जिस लक्ष्य के लिए वह पढ़ाई कर रहा था, अगर वह लक्ष्य उसे मिल जाए, तो उसे परम आनंद की प्राप्ति हो जाएगी।

अब अर्जुन पूछता है कि यह जो आत्मजयी व्यक्ति आपने बोला है, इसके लक्षण क्या हैं? इसे पहचानेंगे कैसे? अब भगवान कृष्ण बताते हैं कि आत्मजयी व्यक्ति कौन होता है। देखो, जिसने अपने मन को जीत लिया है, जिसे सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, मान-अपमान किसी भी चीज़ से कोई फर्क नहीं पड़ता, वह व्यक्ति आत्मजयी है। जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और सोना एक जैसा है, वह व्यक्ति आत्मजयी है। जो दोस्तों और दुश्मनों के लिए समान भाव रखता है, जो ऊंचे से ऊंचे व्यक्ति या नीचे से नीचे व्यक्ति के लिए समान भाव रखता है और जो सभी उपयोगी और अनुपयोगी वस्तुओं और व्यक्तियों का समान रूप से आदर करता है, वह व्यक्ति आत्मजयी होता है। और जो भी व्यक्ति इस प्रकार की अपनी भावना कर लेता है, उसे वह वाली परम शांति मिल जाती है, जो मुझे यानी भगवान कृष्ण को प्राप्त है।

अब अर्जुन पूछता है कि इस प्रकार की परम शांति को प्राप्त करने के लिए और आत्मजयी बनने के लिए क्या करना पड़ता है? और फिर भगवान ध्यान योग के बारे में बताते हैं कि ध्यान योग को करना किस तरह से चाहिए।

अब भगवान बताते हैं कि योगी को एकांतवास करना चाहिए, अकेले बैठना चाहिए। सभी प्रकार की इच्छाओं को छोड़कर पूरा ध्यान अपने में, यानी स्वयं में लगाना चाहिए। यानी ध्यान योग लगाने के लिए जो सबसे पहली शर्त है, वह यह है कि व्यक्ति को अकेले किसी खाली जगह पर बैठना चाहिए। और फिर अपना सिर और अपनी रीढ़ की हड्डी को सीधा रखते हुए, आंखों को आधा खुला रखकर अपने नाक की नोक की तरफ देखना चाहिए। लंबी-लंबी और गहरी-गहरी सांस लेते हुए और छोड़ते हुए अपने दिमाग को विचारहीन करने का प्रयास करना चाहिए।

विचारहीन समझ लीजिए। देखिए, जब आप शांति से बैठते हो, तो आपके दिमाग में सौ तरह के विचार आते हैं। आपको अपने दिमाग को एकदम ब्लैंक कर देना है। ब्लैंक। आपको केवल और केवल यह कोशिश करनी है कि आपके दिमाग में कोई भी विचार न आए। ऐसा करने से आज्ञा चक्र जागृत हो जाता है। और जब किसी भी व्यक्ति का आज्ञा चक्र जागृत हो जाता है, तो वह व्यक्ति संतुष्ट हो जाता है।

अब भगवान यहां पर यह चीज़ भी बताते हैं कि अर्जुन, तुम्हें ध्यान योग की विधि तो मैंने बता दी, पर मन को वश में करना बहुत ही ज्यादा कठिन काम होता है। और मन को वश में करने के दो तरीके होते हैं: पहला होता है अभ्यास और दूसरा होता है वैराग्य।

अब इस चीज को जरा सा समझ लीजिए। मन को वश में करने के लिए भगवान पहली चीज अभ्यास कह रहे हैं। देखिए, एक छोटा बच्चा होता है, वह बार-बार गिरता है, बार-बार उसको चोट लगती है, लेकिन वह डटा रहता है। और बहुत थोड़े या ज्यादा समय के बाद, आखिरकार बच्चा जो है, वह चलने लगता है। जितनी बार ध्यान लगाते समय मन भटके, उतनी बार उस ध्यान को वापस खींच कर लाओ और अपने ऊपर, खुद पर टिका दो। शुरुआत में आप बार-बार गिरोगे, पर अंततः आप अपने ध्यान को अपने खुद पर लगाना सीख जाओगे। यह हो गई एक चीज।

दूसरी चीज जो भगवान कह रहे हैं, वह यह कि मन को वश में करने के लिए वैराग्य की भावना जरूरी है। देखो, जैसे ही किसी व्यक्ति को यह चीज समझ

में आती है कि कामनाओं की या इच्छाओं की कोई अंत नहीं है। एक पूरी होती है तो दूसरी खड़ी हो जाती है। भाई, ₹10,000 मिलते हैं तनख्वाह में तो चाहेंगे कि ₹20,000 हो जाए। ₹20,000 हो जाएंगे तो इच्छा खत्म नहीं हो जाएगी, फिर लगेगा कि ₹40,000 हो जाएं। ₹40,000, ₹50,000, ₹60,000, ₹1 लाख, ₹2 लाख, ₹10 करोड़... और वह भी कम लगते हैं। यानी आदमी खत्म हो जाता है, पर उसकी इच्छाएं खत्म नहीं होतीं।

पर अगर किसी आदमी को यह चीज समझ में आ जाए कि मेरी इच्छाएं जो हैं, वह बढ़ती ही चली जाएंगी और जितनी ज्यादा इच्छाएं बढ़ती चली जाएंगी, उनको जब तक मैं पूरा नहीं करूंगा, तब तक मुझे दुख ही रहेगा। यानी मैं हमेशा दुख की स्थिति में रहूंगा। तो सुख पाने का केवल एक तरीका है कि इच्छाओं को खत्म किया जाए। यानी जितना जरूरी है, बस उतना ही कमाने का या उतना ही प्राप्त करने की कोशिश की जाए। That's it। तो उस व्यक्ति का जो मन है, वह उसके वश में हो जाएगा। उसका जो ध्यान है, वह अपने आप में लगने लग जाएगा।

अब अर्जुन यहां पर एक बहुत ही तर्कसंगत प्रश्न पूछता है भगवान से। अर्जुन कहता है, "भगवान, आप कह रहे हो कि मन को वश में करना बहुत ही कठिन है और ध्यान योग का अगर मैं पालन करूंगा, तो मुझे मोक्ष मिल जाएगा। पर मान लीजिए कि मैं अपने ध्यान को उस लेवल पर लेकर जाऊं और उससे पहले ही, अगर मान लीजिए, मेरी मृत्यु हो जाती है, तो फिर क्या होगा?"

बहुत ही सही सवाल है! भाई, मोक्ष प्राप्ति के लिए सब चीजें कर रहा हूं। पर अगर मृत्यु के बाद मुझे मोक्ष ही नहीं मिला, तो मेरी तो पूरी जिंदगी ही बेकार हो जाएगी। मैंने सुखों को भी नहीं भोगा और पूरी जिंदगी बस तप ही करता रह गया।

अब भगवान कहते हैं, ‘‘देखो अर्जुन, जो बहुत ही ज्यादा खाना खाता है या बहुत ही ज्यादा भूखा रहता है, ऐसे व्यक्ति का ध्यान योग पूरा नहीं होता। ऐसा व्यक्ति जो बहुत ज्यादा सोता है या जो जागता ही रहता है, उसका भी ध्यान योग पूरा नहीं होता। ध्यान योग उसका सिद्ध होता है, जिसका आहार-विहार संतुलित है, जो सभी कर्म उतने ही करता है जितने कि करने चाहिए, जिसका सोना-जागना, खाना-पीना सब नियमित है। उसका ध्यान योग सिद्ध होता है।

यानी मनाही किसी भी चीज की नहीं है। मैं ऐसा नहीं कह रहा हूं कि तुम योग करो, तो फिर दुनिया की सभी चीजें छोड़ दो। तुम सब कुछ करो, पर पूरा जोर संतुलन, संयम और उचित मात्रा पर दो। यानी तुम्हारी जो इंद्रियां हैं, उनको तरसाओ मत, पर उनका अति प्रयोग भी मत करो। जितना जरूरी है, उतना करो, उसके बाद मत करो। That is the point। और जैसा कि तुम कह रहे थे कि अगर मोक्ष प्राप्त नहीं हुआ और बीच में मृत्यु हो गई, तो फिर क्या होगा। तो अर्जुन, इस चीज को समझो कि जो भी व्यक्ति अच्छा काम करता है, उसका कभी भी नाश नहीं होता। अच्छे रास्ते की तरफ बढ़ाया गया हर कदम हमेशा आपको ऊंचा उठाता है।

और मृत्यु... मृत्यु जो है, वह दो जन्मों के बीच की नींद के समान है। जैसे मान लो, हमने किसी काम को आज शुरू किया और अगर वह काम आज खत्म नहीं हुआ, तो हम उस काम को दूसरे दिन कर सकते हैं। जो भी काम इस जन्म में नहीं हो पाता है, वह काम दूसरे जन्म में होता है।

तुमने देखा होगा, कुछ लोग बचपन से ही बड़े धार्मिक होते हैं। कुछ लोगों को बचपन से ही ऐसी भावना रहती है कि लोगों का भला करेंगे। और कुछ लोग बचपन से ही दुष्ट प्रकृति के होते हैं। उनको लगता है कि भाई, दूसरों को नुकसान पहुंचाना है। बचपन से ही सारी चीजें दिख जाती हैं। ऐसा क्यों होता है? ऐसा इसलिए होता है क्योंकि ये सब पूर्व जन्म के संस्कार होते हैं।

और क्योंकि आखिरकार हर आत्मा को मेरे अंदर समा जाना है। तो जब भी उनकी साइकिल पूरी होगी, वे मेरे अंदर आकर समा जाएंगे। इसलिए हे अर्जुन, तू अपना सारा ध्यान स्वयं में लगा, ताकि तेरा अंतरतम मुझमें लीन हो सके।"

इसके साथ गीता का छठा अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय ७: ज्ञान-विज्ञान योग

यह है गीता का सातवां अध्याय और इसके अंदर ज्ञान-विज्ञान योग के बारे में समझाया गया है। अब इस अध्याय में भगवान कहते हैं, "हे अर्जुन, तू पूरा मन मुझ में लगा और केवल मेरा ही आश्रय ले।"

अब "मेरा ही आश्रय ले" का मतलब समझ लीजिए। इसका अर्थ होता है कि दुनिया में किसी भी व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति से किसी भी प्रकार की कोई भी आशा मत कर। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए क्योंकि कोई भी तुझे कुछ भी नहीं दे सकता।

अब भगवान आगे इस बात को विस्तार से समझाते हैं। वे कहते हैं, "देखो, दुनिया में दो तरह के विषय होते हैं - ज्ञान और विज्ञान।"

ज्ञान का अर्थ है उन चीज़ों को जानना जो अप्रत्यक्ष हैं, यानी जो दिखाई नहीं देतीं। विज्ञान का अर्थ है उन चीज़ों को जानना जो प्रत्यक्ष हैं, यानी जो दिखाई देती हैं।

भगवान कहते हैं, "इस ज्ञान और विज्ञान के बारे में मैं तुझे ऐसी बातें बताऊंगा अर्जुन, जिन्हें जानने के बाद तुझे और कुछ भी जानने योग्य नहीं रह जाएगा। और इसलिए अर्जुन, तू इस बात को बहुत ध्यान से सुन।"

फिर भगवान कहते हैं, "दुनिया में हजारों लाखों लोग होते हैं, उनमें से कोई एक होता है जो मुझे जानने की कोशिश करता है। और ऐसे हजारों लाखों लोगों में से कोई एक व्यक्ति ऐसा होता है जो मुझे जान पाता है।"

अब भगवान समझाते हैं कि जितनी भी चीज़ें तुझे दिखाई देती हैं, वह मेरी प्रकृति है, यानी मैंने बनाई हैं। यह मेरा जड़ तत्व है। और इन सभी चीज़ों को चलाने वाली जो शक्ति है, वह मेरा चेतन तत्व है। यानी, इस बात को समझ ले कि जो संपूर्ण ब्रह्मांड है, वह भगवान का शरीर है। और वह शक्ति, जो इस पूरे ब्रह्मांड को चला रही है, वह भगवान की आत्मा है, यानी चेतन तत्व।

"पूरा ब्रह्मांड मुझसे बनता है और मुझमें आकर खत्म हो जाता है। यानी अर्जुन, इस संपूर्ण ब्रह्मांड में मेरे अलावा और कुछ है ही नहीं।"

अब देखिए, भगवान ने यह बात भी कही थी कि "हजारों लाखों लोगों में से कोई एक व्यक्ति ऐसा होता है जो मुझे जानने की कोशिश करता है। और उन जैसे हजारों लाखों लोगों में से कोई एक व्यक्ति ऐसा होता है जो मुझे जान पाता है।"

भगवान ने ऐसा क्यों कहा? ऐसा क्यों होता है? अब इस बात को एक उदाहरण से समझते हैं।

देखिए, आपने कठपुतली का खेल देखा होगा। हमें कठपुतली तो दिखाई देती है, लेकिन उसे चलाने वाला कौन है, यह नहीं दिखता। क्यों नहीं दिखता? क्योंकि वह पर्दे के पीछे होता है। हम सभी इंसान तीन गुणों से बने हैं, और ये तीन गुण हैं - सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण।

इन तीन गुणों की वजह से इंसान मोह-माया में फंस जाता है। मोह-माया वह पर्दा है, जिसकी वजह से हम उस कठपुतली को चलाने वाले, यानी भगवान को, नहीं देख पाते।

अब इस बात को और गहराई से समझते हैं। जो चीज सामने है, उसी को समझने की कोशिश करेंगे। जो चीज दिखाई ही नहीं दे रही, यानी अप्रत्यक्ष है, उसे जानने की कोशिश कैसे करेंगे? और इसी कारण भगवान ने "हजारों लाखों लोगों वाली" बात कही है।

एक और बात को समझते हैं। मान लीजिए, कोई छोटा बच्चा कठपुतली का खेल देख रहा है। वह यही सोचता रह जाता है कि कठपुतली कैसे चल रही है। लेकिन हम लोग, जो थोड़े बड़े और समझदार हैं, जानते हैं कि यह कठपुतली नहीं चल रही, बल्कि उसे कोई चला रहा है।

बच्चा यानी अज्ञानी। और **हम**, जो समझदार हैं, ज्ञानी।

ज्ञानी व्यक्ति यह समझ जाता है कि इस कठपुतली यानी संपूर्ण ब्रह्मांड को कौन चला रहा है और उसे जानने की कोशिश करता है। ऐसे हजारों लाखों ज्ञानियों में से कोई एक ज्ञानी ऐसा होता है, जो भगवान को जान पाता है।

और जो अज्ञानी है, वह तो मोह-माया के जाल से ही बाहर नहीं निकल पाता। और इसी कारण भगवान कहते हैं, "हे अर्जुन, तू पूरा मन मुझ में लगा और केवल मेरा ही आश्रय ले।"

और यही पूरे ज्ञान-विज्ञान योग का सार है
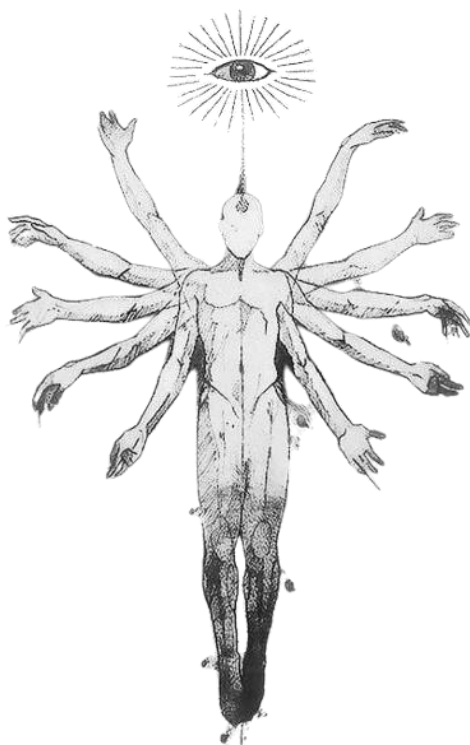
अध्याय ८: अक्षरब्रह्म योग

यह है गीता का आठवां अध्याय और इसमें अक्षर ब्रह्म योग के बारे में बात की गई है। अब इस अध्याय में अर्जुन सात प्रश्न पूछता है और भगवान कृष्ण उन सातों प्रश्नों के जवाब देते हैं।

पहला प्रश्न है: ब्रह्म क्या है?

जो कभी भी नष्ट नहीं होता, उसे ब्रह्म कहते हैं। ना यह घटता है, ना ही बढ़ता है। हमेशा एक जैसा रहता है, वही ब्रह्म है।

दूसरा प्रश्न: अध्यात्म क्या है?

किसी भी व्यक्ति के द्वारा स्वयं को जानने की कोशिश करना अध्यात्म है।

तीसरा प्रश्न: कर्म क्या है?

पहले क्या होता था और बाद में क्या होगा, इन दोनों भावनाओं को अलग करके वर्तमान में, यानी इस समय जो भी कर्तव्य है, उसे करना कर्म है।

चौथा प्रश्न: अधिभूत क्या है?

जितनी भी चीज़ें तू देखता है, जो पैदा होती हैं और नष्ट हो जाती हैं, वह सब अधिभूत हैं।

पांचवां प्रश्न: अधिदेव देव क्या है?

जितनी भी चीज़ें तू देखता है, उन सभी चीज़ों का प्राण तत्व अधिदेव देव है। यानी, अर्जुन, मैं अधिदेव हूं।

छठा प्रश्न: अधियज्ञ क्या होता है?

भगवान कहते हैं कि संपूर्ण ब्रह्मांड में जितनी भी चीज़ें होती हैं, जितनी भी क्रियाएं होती हैं, वह सभी चीज़ें और सभी क्रियाएं मैं करता हूं। और यज्ञ करने की भावना से करता हूं, यानी इनसे मुझे लाभ या हानि की किसी भी चीज़ की कोई अपेक्षा नहीं होती। यह भावना के साथ जो भी किया जाए, वह अधियज्ञ है।

सातवां और आखिरी सवाल अर्जुन का यह है: मृत्यु के समय चित्त को कैसे स्थिर किया जाए?

अब यहां पर भगवान अर्जुन को समझाते हैं कि मरते समय जिस व्यक्ति की जैसी भावना होती है, उसे वही भाव प्राप्त होता है। और अंतिम भावना, जो किसी भी व्यक्ति की होती है, वही भावना होती है जो जीवनभर उसने रखी होती है। इसलिए, उसी भावना के अनुसार उसे वही वाला भाव प्राप्त होता है।

अब इस बात को ज़रा समझ लीजिए।

अगर किसी व्यक्ति की जीवनभर बुरी भावनाएं रही हों, तो उसे एक बुरी योनि मिलती है। और अगर कोई व्यक्ति, जिसने जीवनभर अच्छी भावनाएं रखी हों, अच्छे कर्म किए हों, शुभ कर्म किए हों, उसे अच्छी योनि मिलती है। इसलिए, मरते समय जो मनुष्य मेरा स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, वह मेरे स्वरूप में मिल जाता है। पर क्योंकि मरते समय भी इंसान की भावनाएं वही होती हैं, जो जीवनभर उसकी भावनाएं रही हों, इसलिए हे अर्जुन, हर समय मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर।

अब ज़रा इसे समझ लीजिए।

भगवान कह रहे हैं कि **"तू मेरा स्मरण भी कर और युद्ध भी कर।"**

यहां युद्ध से मतलब लड़ाई से नहीं है। यहां युद्ध से मतलब कर्तव्य से है। अर्जुन जो है, वह क्षत्रिय है, और क्षत्रिय का कर्तव्य है युद्ध करना। इसलिए भगवान कह रहे हैं, "तू युद्ध कर।"

अलग-अलग व्यक्तियों के अलग-अलग धर्म होते हैं, और उन्हीं के अनुसार उनके कर्तव्य भी अलग-अलग होते हैं। यानी जो भी तुम्हारा कर्म है, वही तुम्हारा कर्तव्य है और वही तुम्हारा धर्म है।

तो जो भी तुम करो, जो भी तुम्हारा कर्तव्य हो, उसे करो और मेरा स्मरण भी करो। क्योंकि जो मनुष्य अपने चित्त को नहीं भटकने देता और पूरी एकाग्रता के साथ लगातार अभ्यास करता है, उसे लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है।

अब इसे फिर से समझ लीजिए। बिना ध्यान भटकाए, पूरी एकाग्रता के साथ लगातार अभ्यास करने से लक्ष्य प्राप्त हो जाता है।

अब इसे ज़रा और गहराई से समझें।

मानव योनि का जो अल्टीमेट ऑब्जेक्टिव, यानी अंतिम लक्ष्य है, वह मोक्ष पाना है। इसलिए जो भी व्यक्ति बिना अपना ध्यान भटकाए, पूरी एकाग्रता के साथ स्वयं को जानने का अभ्यास करता है, उसे मोक्ष मिल जाता है।

और इसीलिए, हे अर्जुन, अपनी सभी इंद्रियों को उनके विषयों से हटाकर आत्मा में, यानी स्वयं में एकाग्र होकर, **"ॐ"** अक्षर का उच्चारण करते हुए, जो भी व्यक्ति देह त्यागता है, वह परम गति प्राप्त कर लेता है।

और यही अक्षर ब्रह्म योग का सार है।

अध्याय ९: राजविद्याराजगुह्य योग

यह है गीता का नौंवा अध्याय और इस अध्याय के अंदर राजविद्याराजगुह्य योग के बारे में बताया गया है।

अब राजविद्या का मतलब है ऐसी विद्या जो सर्वश्रेष्ठ है, और राजगुह्य का मतलब है ऐसा रहस्य जिसे कोई भी नहीं जानता। भगवान कृष्ण इस अध्याय में अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ विद्या और दुनिया का सबसे बड़ा रहस्य बताएंगे।

अब भगवान इस अध्याय में यह भी बताते हैं…

भगवान अर्जुन को यह बताते हैं कि मुझे पाने का केवल और केवल एक तरीका है, और वह है श्रद्धा रखना।

अब नौंवा अध्याय शुरू करते हैं।

भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं: "अर्जुन, तेरी सबसे अच्छी बात यह है कि तेरे अंदर दोष ढूंढने की प्रवृत्ति नहीं है। और इसलिए, दुनिया की सर्वश्रेष्ठ

विद्या, जो कि दुनिया का सर्वोच्च रहस्य भी है, मैं तुझे बताऊंगा। और यह भी समझ ले कि इसको जानने के बाद तू मुक्त हो जाएगा।

अब देखिए, क्योंकि जो चीज बताई जा रही है वह सर्वश्रेष्ठ विद्या और सर्वोच्च रहस्य है, इसीलिए यह किसी योग्य व्यक्ति के द्वारा ही किसी योग्य व्यक्ति को दी जा सकती है। यानी यह इस तरह की विद्या है कि जिसको सीखने के लिए अर्जुन जैसा स्टूडेंट लगता है, और इसे सिखाने के लिए भगवान कृष्ण जैसा टीचर लगता है।

अब देखिए, इस चीज को भी समझिए। भगवान ने अर्जुन से यह कहा है कि तेरी सबसे अच्छी क्वालिटी यह है कि तेरे अंदर दोष ढूंढने की प्रवृत्ति नहीं है।

ऐसा क्यों?

जो आदमी हमेशा दोष ढूंढता रहता है, वह अपनी जिंदगी में कुछ भी नहीं सीख पाता। ऐसा क्यों होता है?

क्योंकि वह हर चीज में दोष ही ढूंढता रहता है।

और इसीलिए, सिखाया उसको जाता है, जो सीखने के लायक हो और सीखने के लिए तैयार हो।

अब भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं: "जो भी व्यक्ति श्रद्धा नहीं रखता, वह मुझ ब्रह्म तक नहीं पहुंच पाता और वह अलग-अलग योनियों में भटकता

रहता है। भगवान कहते हैं कि जितनी भी चीजें तू देखता है, उन सभी चीजों में, उन सभी प्राणियों में मैं स्थित हूं।

मैं ही सभी को पैदा करता हूं, मैं ही सभी का पालन करता हूं, और मैं ही उनको नष्ट भी करता हूं।

यानी इसका मतलब यह है कि पूरे ब्रह्मांड को मैं बनाता हूं, मैं ही उसका पालन-पोषण करता हूं, और मैं ही पूरे ब्रह्मांड को नष्ट कर देता हूं। और यह सब मैं बिना किसी आसक्ति के करता हूं। यानी इसको करते समय मुझे किसी लाभ-हानि की परवाह नहीं होती, और न ही मैं इस चीज के बारे में सोचता हूं। ब्रह्म का रहस्य यह है कि पूरे ब्रह्मांड में, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जो कुछ भी है, वह सब कुछ मैं ही हूं। दुनिया की कोई भी चीज, यानी पूरे ब्रह्मांड की कोई भी चीज, मुझसे अलग नहीं है। और इस संसार में जो कुछ भी होता है, सब मेरी इच्छा से होता है। मैं ही उसे करता हूं।

अब भगवान आगे यह बताते हैं:

जो लोग यज्ञ वगैरह करते हैं, पूजा वगैरह करते हैं और स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, तो उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है। पर जैसे ही उनके किए हुए अच्छे कर्म क्षीण हो जाते हैं, यानी जो भी उन्होंने अच्छा किया था, उसके बदले में जितना स्वर्ग मिलना था, वह जब भोग लेते हैं, तो फिर वापस वे

मृत्यु लोक में आ जाते हैं। और फिर से उनकी साइकिल चालू हो जाती है, जीने-मरने की।

अब भगवान ने आगे एक बात कही है, जो बहुत ध्यान से सुनने की है:

"जो भी लोग देवताओं का पूजन करते हैं, वे परोक्ष रूप से मेरी ही पूजा कर रहे हैं। पर उनकी पूजा सही विधि से नहीं होती है। क्योंकि वे लोग यह नहीं जानते कि वे जिस भी देवता की पूजा कर रहे हैं, उन सभी देवताओं का जो स्वामी है, वह मैं ही हूं।

यानी पूजा लोगों को मेरी करनी चाहिए, पर वे मेरी पूजा नहीं करते और देवताओं की पूजा करते हैं। जिसकी वजह से उन्हें बार-बार स्वर्ग में जाना पड़ता है और फिर वापस पृथ्वी पर आना पड़ता है।

भगवान ने यहां पर यह कहा है: "अगर मुझे पाना चाहते हो, तो तुम मेरी पूजा करो।"

पूजा से मतलब है मेरे प्रति श्रद्धा का भाव रखना।

आगे भगवान कहते हैं: "साफ दिल से, भक्ति-पूर्वक अर्पित किए हुए फल-फूल भी मैं स्वीकार कर लेता हूं।"

अब यहां जो बात कही गई है, वह बहुत ध्यान से समझने की है।

उन्होंने कहा है: "स्वच्छ चित्त से," यानी साफ दिल से और श्रद्धा-पूर्वक, अगर फल-फूल, पत्ती भी अर्पित की जाए, तो वह उन्हें स्वीकार है।

इस बात को समझिए। भगवान ने तो हर चीज बनाई है, ब्रह्मांड बनाया है। उन्हें आपसे कुछ भी चाहिए ही नहीं। यानी इस चीज को मानने में कोई बुराई नहीं है कि हमारी वास्तव में कोई औकात नहीं है कि हम ईश्वर को कुछ भी दे सकें। जिन्होंने सब कुछ बनाया है, उन्हें आप क्या दोगे?

भगवान के सामने इस बात का महत्व नहीं है कि आपने क्या अर्पित किया है। भगवान के सामने इस बात का महत्व है कि श्रद्धा क्या थी, भावना क्या थी, और किस भाव से आपने उन्हें कुछ भी अर्पित किया।

आगे भगवान कहते हैं:

"हे अर्जुन, तू जो कुछ भी करता है, जो कुछ भी खाता है, जो कुछ भी हवन में आहुति देता है, जो कुछ भी दान करता है, जो कुछ भी तप करता है, वह सब करते हुए बस यही भाव रख कि तू सब कुछ मुझे अर्पित कर रहा है।"

ऐसा इसलिए कहा गया है, क्योंकि ऐसा करने से तू अपने सभी कर्मों के शुभ और अशुभ फलों से मुक्त हो जाएगा। और जैसे ही तू इन सब चीजों से मुक्त हो जाएगा, वैसे ही तू मुझमें आकर समा जाएगा, यानी तुझे मोक्ष मिल जाएगा। और यही राजविद्याराजगुह्य योग है।

इसके साथ गीता का नौंवा अध्याय समाप्त होता है।

शाश्वत उर्जा

अध्याय १०: विभूति योग

यह है गीता का दसवां अध्याय, और इसे विभूति योग कहते हैं।

भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि देखो, जो पूरी सृष्टि है, यह मैंने बनाई है। और जो पूरी सृष्टि है, वह जिस शक्ति से चलती है, वह भी मेरी ही शक्ति है।

अर्जुन को यह बात ठीक से समझ में नहीं आती कि यह शक्ति किस प्रकार की है। इस शक्ति को समझाने के लिए भगवान कृष्ण बताते हैं कि जिस-जिस चीज में जो भी श्रेष्ठता तुम देखते हो, वह मेरी वजह से है।

और इसी श्रेष्ठता को विभूति कहा गया है।

अब दसवां अध्याय शुरू करते हैं।

भगवान कृष्ण कहते हैं: "अर्जुन, मेरी उत्पत्ति को न तो देवता जानते हैं और न ही महर्षि। और ऐसा इसलिए है क्योंकि ये जितने भी देवता और महर्षि हैं, ये सब मेरे बाद पैदा हुए, मेरे कारण पैदा हुए हैं।

अब यह सीधी सी बात है समझने की: जो भी बाद में पैदा हुआ है, वह अपने से पहले पैदा हुए व्यक्ति के बारे में कैसे जान सकता है?

भगवान कहते हैं: "सारे जगत की उत्पत्ति का कारण मैं ही हूं और मेरे ही कारण पूरी सृष्टि में चेष्टा है।"

अब इस बात को समझिए।

भगवान जिस चीज के बारे में बात कर रहे हैं, वह यह है कि मैं ब्रह्म हूं। अब ब्रह्म क्या है, यह बड़े-बड़े देवता, महर्षि और ज्ञानी भी समझ नहीं पाए। ब्रह्मांड ही इतना बड़ा है, तो आप खुद सोचिए कि ब्रह्म कितना बड़ा होगा।

और इसीलिए अर्जुन असल में समझ ही नहीं पाता कि ब्रह्म है क्या।

इसलिए अर्जुन भगवान कृष्ण से कहता है कि: "आप मुझे अपने बारे में ऐसे बताइए, जिसे मैं समझ सकूं।"

भगवान कहते हैं:

"देखो अर्जुन, मेरे विस्तार का कोई अंत है ही नहीं। पर फिर भी मैं तुम्हें अपनी थोड़ी-सी विभूतियों के बारे में बताता हूं। जितने भी प्राणी हैं, उन सभी प्राणियों की मैं आत्मा हूं। और सभी प्राणियों का आदि, मध्य, और अंत हूं।"

आदि, मध्य और अंत का मतलब समझिए:

आदि का मतलब है उत्पन्न करने वाला।

मध्य का मतलब है पालन-पोषण करने वाला।

अंत का मतलब है नष्ट करने वाला।

और इस तरह से, आदि, मध्य और अंत का एक और मतलब यह भी हो सकता है: क्योंकि मैं इन्हें बनाता हूं, इनका आदि हूं, इसलिए मैं ब्रह्मा हूं। क्योंकि मैं इनका पालन-पोषण करता हूं, इसलिए मैं विष्णु हूं।

क्योंकि मैं इनका अंत करता हूं, इसलिए मैं शंकर भी हूं।

पर यह चीज सिंबॉलिक है।

आगे भगवान अपनी बात को अच्छे से समझाने के लिए कई उदाहरण देते हैं:

1. आदित्यों में मैं विष्णु हूं।

2. प्रकाश-पुंजों में मैं सूर्य हूं।

3. मरुतों में मैं मरीचि नामक तेज हूं।

4. नक्षत्रों में मैं चंद्रमा हूं।

5. वेदों में मैं सामवेद हूं।

6. देवताओं में मैं इंद्र हूं।

7. इंद्रियों में मैं मन हूं।

8. प्राणियों में मैं चेतना हूं।

9. रुद्रों में मैं शंकर हूं।

10. यक्ष और राक्षसों में मैं धन के स्वामी कुबेर हूं।

11. वसुओं में मैं अग्नि हूं।

12. पर्वत-शिखरों में मैं सुमेरु हूं।

13. पंडितों में मैं बृहस्पति हूं।

14. सेनापतियों में मैं कार्तिकेय हूं।

15. जलाशयों में मैं समुद्र हूं।

16. महर्षियों में मैं भृगु हूं।

17. वानियों में मैं ओम हूं।

18. यज्ञों में मैं जप-यज्ञ हूं।

19. अचल पदार्थों में मैं हिमालय हूं।

20. वृक्षों में मैं पीपल हूं।

21. देवर्षियों में मैं नारद हूं।

22. गंधर्वों में मैं चित्ररथ हूं।

23. सिद्धजनों में मैं कपिल मुनि हूं।

24. घोड़ों में मैं उच्चैश्रवा हूं।

25. हाथियों में मैं ऐरावत हूं।

26. मनुष्यों में मैं राजा हूं।

27. शस्त्रों में मैं वज्र हूं।

28. गुरुओं में मैं बृहस्पति हूं।

29. गायों में मैं कामधेनु हूं।

30. संतान उत्पादकों में मैं कामदेव हूं।

31. सर्पों में मैं वासुकी हूं।

32. नागों में मैं शेषनाग हूं।

33. जलचरों में मैं वरुण हूं।

34. पितरों में मैं अर्यमा हूं।

35. शासन करने वालों में मैं यम हूं।

36. दैत्यों में मैं प्रह्लाद हूं।

37. गणना करने में मैं समय हूं।

38. पशुओं में मैं सिंह हूं।

39. पक्षियों में मैं गरुड़ हूं।

40. पवित्र करने वालों में मैं वायु हूं।

41. शस्त्रधारियों में मैं राम हूं।

42. मछलियों में मैं मगरमच्छ हूं।

43. नदियों में मैं गंगा हूं।

44. विधाओं में मैं आध्यात्मिक विद्या हूं।

45. समासों में मैं द्वंद्व-समास हूं।

46. संहार करने वालों में मैं मृत्यु हूं।

47. स्त्रियों में मैं लक्ष्मी, वाणी, स्मृति, बुद्धि, धारण-शक्ति, और क्षमा हूं।

48. स्तुतियों में मैं वृहत्साम हूं।

49. वैदिक छंदों में मैं गायत्री हूं।

50. मासों में मैं मार्गशीर्ष हूं।

51. ऋतुओं में मैं वसंत हूं।

52. छल-कपट करने वालों के लिए मैं जुआ हूं।

53. तेजस्वियों का तेज, जीतने वालों की विजय, और निश्चय करने वालों का संकल्प सब मैं हूं।

54. सद्गुण वालों का सात्विक भाव मैं हूं।

55. विष्णु वंशियों में मैं स्वयं वासुदेव हूं।

56. पांडवों में मैं अर्जुन हूं।

57. मुनियों में मैं व्यास हूं।

58. कवियों में मैं शुक्राचार्य हूं।

59. दमन करने वालों की दमन शक्ति मैं हूं।

60. विजय की अभिलाषा रखने वालों की नीति मैं हूं।

61. विधाओं में मैं मौन हूं।

62. ज्ञानियों के लिए मैं ज्ञान तत्व हूं।

सभी प्रकार के जड़, चेतन, प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष की उत्पत्ति का कारण मैं हूं।

ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जिसका अस्तित्व मेरे बिना रह सके।

मेरी विभूतियों का कोई अंत नहीं है।

इसलिए हे अर्जुन, जहां-जहां तुझे विशेष ऐश्वर्य, शोभा और अलौकिक शक्ति दिखाई दे, तू समझ ले कि वहां मैं ही हूं। और इसीलिए, हे अर्जुन, तू जिस किसी को भी देख, उसके अंदर मुझको देख। यही विभूति योग है।

इसके साथ गीता का दसवां अध्याय समाप्त होता है।
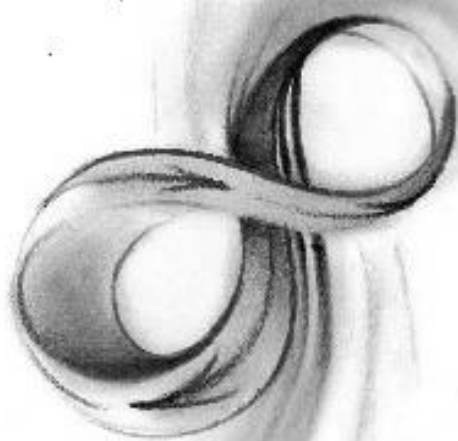
अध्याय ११: विश्वरूपदर्शन योग

देखिए, यह है ११वां अध्याय, और इसी अध्याय में भगवान ने अर्जुन को अपना विश्वरूप दिखाया है। इसी कारण इस अध्याय को विश्वरूपदर्शन योग कहते हैं। अब देखिए, दसवें अध्याय में भगवान ने अर्जुन को बताया था कि दुनिया में जितनी भी चीजें हैं, जो अपनी विशेषताओं की वजह से जानी जाती हैं, उन सभी विशेषताओं का कारण मैं ही हूं। और इसी को विभूति कहा गया है।

अर्जुन अब भगवान से कहता है कि क्योंकि सभी चीजों की विशेषताएं आपकी वजह से हैं, मैं देखना चाहता हूं कि आप असल में दिखते कैसे हैं। भगवान कहते हैं कि इन मानव नेत्रों से तुम मुझे देख नहीं पाओगे, इसलिए मैं तुम्हें दिव्य नेत्र, दिव्य चक्षु प्रदान करता हूं, दिव्य दृष्टि देता हूं ताकि तुम मेरा रूप देख सको। इतना कहकर भगवान अर्जुन को दिव्य दृष्टि देते हैं और अपना विश्वरूप दिखाते हैं। अब इस चीज को समझिए कि इस रूप के बारे में ऐसा बताया गया है कि वह जो रूप था भगवान का, पूरे आश्चर्यचकित कर देने वाला था। वह इस तरह का था कि जिसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।
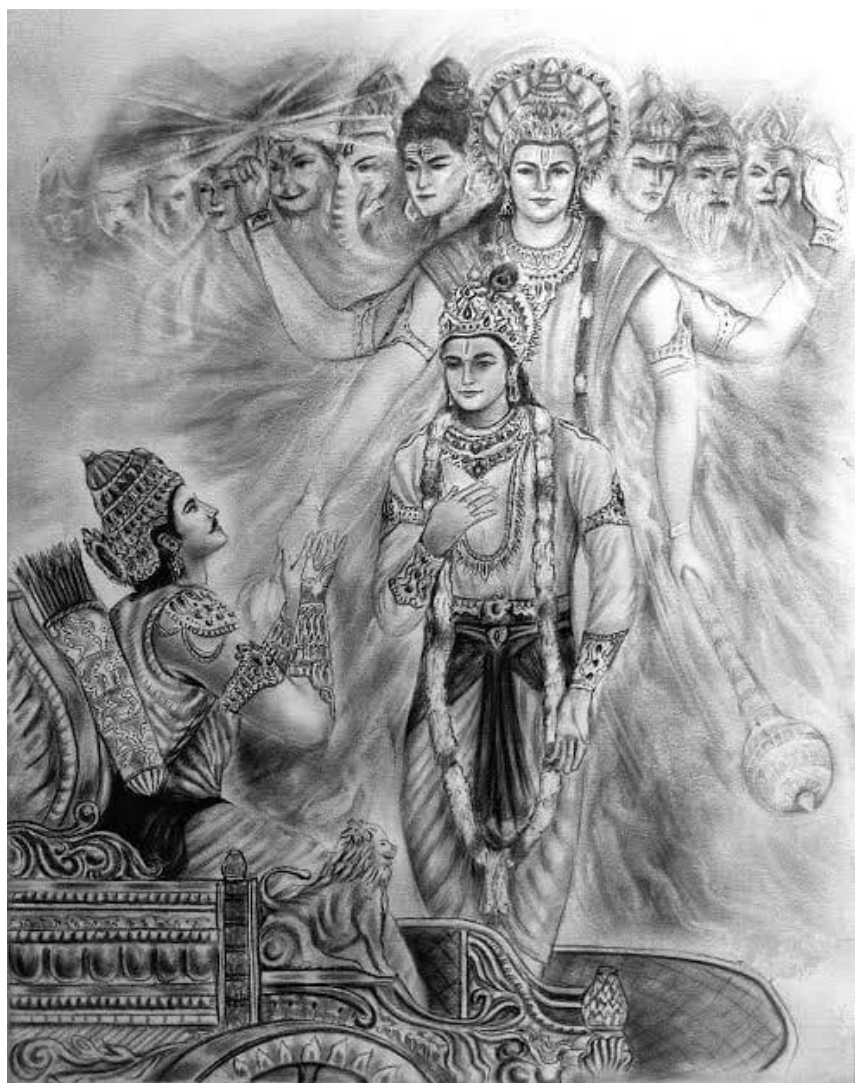
संजय, जो कि धृतराष्ट्र को युद्ध का आंखों देखा हाल बता रहा था, उसके पास भी दिव्य दृष्टि थी। वह धृतराष्ट्र को बताता है कि अगर हजारों सूर्य एक साथ आसमान में चमक पड़े, तब भी उनकी चमक उतनी नहीं होगी जितनी भगवान के विश्वरूप की है।

अर्जुन जब विश्वरूप देखता है, तो वह देखता है कि अनेक भुजाएं, अनेक मुख, अनेक नेत्र और भगवान का अनंत रूप है। मतलब, उस रूप का आदि, मध्य और अंत कुछ भी समझ में नहीं आता। हजारों सूर्य के समान चमक से अर्जुन कहता है, "भगवान, मेरी आंखें चौंधिया रही हैं। इस रूप को देखने में मुझे कोई धीरज और शांति नहीं प्राप्त हो रही है। मुझे डर लग रहा है।"

यानी ऐसा रूप, जिसका कोई आदि-अंत नहीं है, जिसे शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता, ऐसा रूप अर्जुन देख रहा है। उस रूप को देखकर अर्जुन को धीरज और शांति नहीं मिल रही है; वह व्याकुल हो रहा है, डर रहा है।

अब इस चीज को समझिए और बहुत अच्छे से समझिए कि विश्वरूप दिखाने का मकसद क्या था। अर्जुन सोच रहा था कि सभी विशेषताएं भगवान की वजह से हैं, तो भगवान देखने में कितने सुंदर होंगे। पर जब वह भगवान का रूप देखता है, तो उसे डर लग रहा है। विश्वरूप दिखाने का यह मकसद है कि विश्व में सब कुछ सुंदर ही नहीं है। विश्व में बहुत सारी चीजें ऐसी हैं, जो भयानक भी हैं। और जब तक किसी व्यक्ति को किसी भी चीज के सभी पहलू मालूम न हों, तब तक वह संपूर्ण नहीं होता ।भगवान का एक काम ब्रह्मा के रूप में सृष्टि का निर्माण करना है,

और यह वास्तव में सुंदर दिखने वाला काम होगा। भगवान का दूसरा काम सृष्टि का पालन-पोषण करना है विष्णु के रूप में, और यह भी एक सुंदर कार्य है। पर भगवान का एक कर्म संहार करना भी है, शंकरजी के रूप में। और कुछ भी कहें, यह जो कर्म है संहार करने का, नष्ट करने का, यह किसी भी तरह से सुंदर नहीं हो सकता। पर भगवान के लिए तीनों कर्म—उत्पन्न करना, पालन-पोषण करना और नष्ट करना—अनिवार्य कर्म हैं।

यानि ये कंपलसरी कर्म हैं, इन्हें तो करना ही करना है। और इसीलिए शुभ और अशुभ कर्म का भगवान के सामने कोई मायने नहीं होता, क्योंकि भगवान जो कुछ भी करते हैं, वह सब आवश्यक होता है, अनिवार्य होता है।

अब भगवान अर्जुन से कहते हैं, "अगर तुम सोच रहे हो कि यह तुम्हारे प्रिय जन हैं और इन्हें तुम मार रहे हो, तो तुम गलत सोच रहे हो। इन सभी लोगों को मैंने पहले ही मार रखा है। और तुम केवल निमित्त मात्र हो।"

अब निमित्त शब्द का मतलब समझ लीजिए। निमित्त का मतलब है भगवान का उपकरण। यानी कर तो भगवान रहे हैं, पर तुम केवल कारण बने हो, जरिया बने हो। यानी अर्जुन, "तुम केवल एक जरिया हो, कर तो मैं ही रहा हूं। और इसीलिए तुम खड़े हो जाओ और युद्ध करो।" क्योंकि, हे अर्जुन, कोई भी व्यक्ति जो कार्य करते समय ऐसा सोचे कि उस कार्य को मैं कर रहा हूं, और जो दुनिया के जितने भी पदार्थ हैं उनके लिए न तो आसक्ति रखे, न ही द्वेष भाव रखे, ऐसा व्यक्ति मुझे प्राप्त कर लेता है। **और इसी के साथ गीता का ११वां अध्याय समाप्त होता है।**

अध्याय १२: भक्ति योग

यह गीता का १२वां अध्याय है, और इसके अंदर भक्ति योग के बारे में बात की गई है। अब देखिए, इस चीज को भी समझ लीजिए कि अगर आपने इस अध्याय का मर्म समझ लिया, तो आप फिर जिंदगी में कभी भी दुखी नहीं होंगे। ठीक है, अब बारहवां अध्याय शुरू करते हैं।

अब अर्जुन भगवान से कहता है, "भगवान, किस प्रकार से आपकी पूजा की जाए? किस प्रकार से कर्म किए जाएं कि व्यक्ति आपको प्राप्त कर सके?" भगवान बोलते हैं, "जो व्यक्ति इंद्रियों को अपने अधीन करके, सभी लोगों की भलाई की इच्छा से अपने सभी कर्मों को मुझे समर्पित करते हुए, एकमात्र मेरा ध्यान करते हुए, जो भी मुझ में अपना मन और अपनी बुद्धि स्थिर करता है, मैं उसको प्राप्त हो जाता हूं।

पर हे अर्जुन, अगर तू मुझ में अपना मन और अपनी बुद्धि स्थिर नहीं कर पा रहा है, तो उस चीज का अभ्यास कर। अभ्यास यानी लगातार कोशिश करते रहना। पर अगर तू अभ्यास भी नहीं कर पा रहा है, तो जो भी कर्म करता है,

उस कर्म को मुझे समर्पित कर दे। अगर तू यह भी नहीं कर पा रहा है, तो अपने सभी कर्मों के फल को तू त्याग दे।

अब जरा इस चीज को समझ लीजिए कि कर्म का फल भगवान को समर्पित कर देना भक्ति योग है और कर्मों के फल को छोड़ देना ज्ञान योग है।

अब भगवान आगे कहते हैं, "जो व्यक्ति किसी भी व्यक्ति से द्वेष नहीं करता, जो सभी लोगों और सभी जीवों का भला चाहता है, जो दयालु है, अहंकार रहित है, जो सुख और दुख को एक समान समझता है, जो क्षमावान है, जिसे जो मिल जाए उसी में संतोष होता है, जो स्थिर चित्त है, जो अपने मन को अपने वश में रखता है, जो दृढ़ निश्चयी है, जिसने अपने मन और अपनी बुद्धि को मुझ में स्थिर कर दिया है, ऐसा व्यक्ति मुझे प्रिय है।

जो किसी भी जीव को परेशान नहीं करता और खुद भी किसी से परेशान नहीं होता, जिसे किसी भी चीज से हर्ष, भय और उत्तेजना नहीं होती, वह व्यक्ति मुझे प्रिय है। जिसकी कोई चाह नहीं है, जिसके विचार एकदम पवित्र हैं, जो पक्षपात नहीं करता, जो दुख के अवसर पर भी दुखी नहीं होता, जिसने कर्म का अभिमान त्याग दिया है, वह व्यक्ति मुझे प्रिय है।

जो अपनी पसंदीदा वस्तु को पाकर प्रसन्न नहीं होता, किसी से ईर्ष्या या द्वेष नहीं करता, जो किसी भी पदार्थ के मिलने या नहीं मिलने पर प्रसन्न या शोक नहीं करता, जिसे किसी भी प्रकार की कोई भी लालसा नहीं है, जिसने शुभ

और अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों का फल त्याग दिया है, वह व्यक्ति मुझे प्रिय है।

जो शत्रु और मित्र के प्रति एक जैसा भाव रखता है, जिसके लिए मान और अपमान एक समान हैं, जो सर्दी और गर्मी यानी अवसाद और उत्तेजना में एक जैसा रहता है, जिसे अपनी वाणी पर नियंत्रण है, जिसे जो कुछ भी मिलता है उसी में संतुष्ट रहता है, जिसका किसी स्थान विशेष से विशेष लगाव नहीं है, ऐसी स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति मुझे प्रिय है।

और इसी प्रकार के लोग मुझे प्राप्त कर पाते हैं। यही भक्ति योग है। इसके साथ **गीता का १२वां अध्याय समाप्त होता है।**

अध्याय १३: क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ–विभाग योग

यह है गीता का १३वां अध्याय और इसे क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ–विभाग योग कहते हैं। अब इस अध्याय में भगवान ने अर्जुन को **18 चीजें** बताई हैं, जो उसे करनी चाहिए अगर वह मोक्ष की इच्छा रखता है।

1. सम्मान से दूर रहना – यानी सम्मान की इच्छा से कोई भी कार्य नहीं करना।

2. छल नहीं करना – यानी किसी को भी धोखा नहीं देना।

3. अहिंसा का पालन करना।

4. सभी के प्रति क्षमाभाव रखना।

5. सादगी से रहना – यानी दिखावे के चक्कर में नहीं रहना।

6. गुरु की सेवा करना।

7. तन और मन को शुद्ध रखना – यानी साफ रखना।

8. मन को स्थिर रखना – अपने मन को इधर-उधर भटकने नहीं देना।9. आत्मसंयम से रहना – किसी भी चीज का उतना ही उपयोग करना जितना जरूरी है, उससे ज्यादा नहीं और उससे कम भी नहीं।

10. इंद्रियों के विषयों से विरक्ति रखना – यानी वह सारी चीजें जिनसे शरीर को सुख मिलता है, उनके मोह में नहीं पड़ना। अपनी इंद्रियों का उतना ही उपयोग करना, जितना कि कर्तव्य है।

11. अहंकार नहीं करना।

12. जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग और दुख को कर्मों का दोष मानना – यानी जो कुछ भी मिल रहा है, सुख या दुख, उसे यह मानकर चलना कि यह सब मेरे ही कर्मों का फल है। हर चीज के लिए केवल मैं ही जिम्मेदार हूं, मेरे कर्म ही जिम्मेदार हैं। इसके लिए कोई और जिम्मेदार नहीं है।

13. संतान और स्त्री में आसक्ति और ममता का न रखना – इसको थोड़ा समझ लीजिए। देखिए, कोई भी आदमी जो कुछ भी करता है, अपनी पत्नी और बच्चों के लिए ही करता है। तो उनके प्रति जो भी आपका कर्तव्य है, वह तो करो, पर उनके प्रति मोह मत रखो।

14. प्रिय और अप्रिय स्थितियों में अंत:करण का एक सा रखना – यानी जिस चीज की आप इच्छा कर रहे थे, वह हो गई तो उसके लिए खुश नहीं होना, क्योंकि यह तो भगवान की इच्छा थी। और जो मन की इच्छा पूरी नहीं

हुई, तो उसके लिए दुखी नहीं होना, क्योंकि यह भी भगवान की इच्छा थी। ऐसा मानकर चलना।

15. ईश्वर के प्रति अनन्य भक्त रहना – यानी जो कुछ भी मैं करता हूं, ईश्वर, मैं आपकी इच्छा से करता हूं। और इसीलिए जो कुछ भी होता है, वह सब मैं आपको समर्पित करता हूं और इसके बदले में मैं कुछ भी नहीं चाहता।

16. एकांत को पसंद करना और जनसमूह के प्रति अरुचि रखना – ज्यादा समय अगर आप दूसरे लोगों के साथ बिताओगे, तो उतना ही कम समय आप अपने खुद के साथ बिता पाओगे। जितना कम समय आप अपने साथ बिता पाओगे, उतना ही कम आप आत्मा को जान पाओगे। और बिना आत्मा को जाने, यानी बिना स्वयं को जाने, मोक्ष नहीं मिल सकता। इसलिए एकांत में रहना और लोगों से दूर रहना।

17. आत्मा-परमात्मा में मग्न रहना – इसका मतलब होता है स्वयं को ईश्वर का निमित्त मात्र मानना। यानी अपने आप को भगवान का उपकरण मानना, यह मानना कि मुझे भगवान ने किसी खास मकसद से पैदा किया है। जैसे ही वह मकसद पूरा हो जाएगा, मैं वापस बुला लिया जाऊंगा। इसके अलावा मेरी कोई भी महत्वता नहीं है। ऐसा मानकर कार्य करना।

18. स्वयं को समझने का अभ्यास करना – यानी आपको ध्यान लगाना पड़ेगा, ध्यान करना पड़ेगा कि असल में यह जीवन आपको ईश्वर ने क्यों दिया है। फिर उस चीज को समझना पड़ेगा और फिर उस चीज को करना

पड़ेगा। तभी आत्मा-परमात्मा के यथार्थ को समझ पाएंगे, नहीं तो नहीं। और जो भी इन 18 चीजों को कर लेता है, अर्जुन, उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

इसके साथ गीता का १३वां अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय १४: गुणत्रयविभागयोग

यह गीता का १४वां अध्याय है और इसे गुणत्रयविभागयोग कहा गया है। इस अध्याय में भगवान ने यह बताया है कि दुनिया के किसी भी इंसान में तीन तरह की विशेषताएं होती हैं और इन तीन विशेषताओं को त्रिगुण कहा गया है। ये तीन गुण हैं: सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। भगवान बताते हैं कि इन तीन गुणों की वजह से ही इंसान मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाता।

अब यह बात भी समझ लीजिए कि इन तीन गुणों को ही मूल प्रवृत्तियां भी कहा गया है। भगवान आगे बताते हैं कि जो सतोगुण है, वह प्रकाश देने वाला और स्वास्थ्यवर्धक है। जब भी शरीर की सभी कर्मेंद्रिय और ज्ञानेंद्रिय विवेकपूर्ण कार्य करने लग जाएं, तो समझ लेना चाहिए कि सतोगुण की वृद्धि हो रही है। परंतु यह जो सतोगुण है, इसकी वजह से इंसान के अंदर ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा पैदा होती है, जिसकी वजह से वह आसक्ति में बंध जाता है। और क्योंकि ज्ञान की आसक्ति भी आखिरकार आसक्ति ही है, इसी वजह से इंसान मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाता।

दूसरा गुण जो बताया गया है, वह है रजोगुण। अब रजोगुण इंसान को कर्मशील बनाता है, मतलब उसकी कर्म करने की इच्छा बढ़ाता है। यह व्यक्ति लगातार कर्म करता है ताकि वह नई-नई उपलब्धियां हासिल कर सके। पर उपलब्धियों के साथ परेशानी यह है कि जैसे ही एक उपलब्धि प्राप्त होती है, वैसे ही इंसान और भी बड़ी उपलब्धि के पीछे दौड़ने लगता है और बड़ी चीज पाने के लिए मेहनत करने लगता है, जिस वजह से वह कर्मफल में बंध जाता है। कर्मफल में बंधना यानी फिर आसक्ति हो गई, और आसक्ति हो गई यानी फिर मोक्ष नहीं प्राप्त कर पाता।

तीसरा गुण है तमोगुण। तमोगुण की वजह से इंसान के अंदर आलस आ जाता है। आलस आ गया तो अज्ञान तो साथ में आता ही आता है, और जो अज्ञानी है, उसे तो मोक्ष प्राप्त हो ही नहीं सकता।

अब भगवान आगे यह कहते हैं कि ये तीनों गुण हर व्यक्ति में होते हैं, लेकिन कम या ज्यादा मात्रा में। यानी अलग-अलग व्यक्तियों में इन तीन गुणों की अलग-अलग मात्रा होती है, जिसकी वजह से अलग-अलग लोगों की अलग-अलग मूल प्रवृत्तियां होती हैं। जिस व्यक्ति में जो गुण प्रबल होता है, वह बाकी के दो गुणों को दबा देता है और अपने हिसाब से काम करवाने लगता है।

भगवान आगे कहते हैं कि जो सतोगुणी होते हैं, वे उत्तम गति को प्राप्त करते हैं। रजोगुणी मध्यम गति को प्राप्त करते हैं, और तमोगुणी निम्न या अधोगति को प्राप्त करते हैं।

भगवान आगे कहते हैं कि जो व्यक्ति इन तीन गुणों के प्रभाव को समझने लगता है, वह इन तीनों गुणों को लांघ जाता है, यानी उनसे पार पा जाता है। इसलिए ऐसा व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

अर्जुन पूछता है कि भगवान, इन तीन गुणों से मुक्त व्यक्ति के लक्षण क्या हैं? इसका जवाब भगवान पुराने अध्यायों में भी दे चुके हैं। भगवान कहते हैं कि जो व्यक्ति सुख-दुख में एक समान रहता है, जो मिट्टी, पत्थर और सोने को एक जैसा महत्व देता है, जो प्रिय और अप्रिय स्थितियों में एक समान रहता है, जो निंदा और स्तुति को एक समान मानता है, जिसके लिए मित्र और शत्रु एक जैसे हैं और जिसने कर्मों के फल की इच्छा छोड़ दी है—वह व्यक्ति इन तीनों गुणों से लिप्त होने के बाद भी मुक्त है।

ऐसा व्यक्ति गुणातीत कहलाता है, यानी ऐसा व्यक्ति जो गुणों से पार पा चुका है। अब जैसा कि मैंने कहा था कि यह सारी बातें भगवान पुराने अध्यायों में भी बता चुके हैं, तो यह भी बता देता हूं कि गुणातीत व्यक्ति के ये लक्षण दूसरे अध्याय में अस्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति के संदर्भ में बताए गए हैं। यही लक्षण पांचवें अध्याय में संन्यासियों के संदर्भ में बताए गए हैं, और लगभग यही गुण बारहवें अध्याय में अपने प्रिय भक्त के संदर्भ में बताए गए हैं।

यानी यह समझ लीजिए कि सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण सभी प्रकार के इंसानों में होते हैं। परंतु जो भी व्यक्ति निष्काम भावना से अपना कर्म करता

है, वह इन तीन गुणों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। और यही गीता के **१४वें अध्याय का सारांश है।**

अध्याय १५: पुरुषोत्तम योग

यह गीता का **१५**वां अध्याय है और इसे पुरुषोत्तम योग कहा गया है। देखिए, केवल मनुष्य योनि ही कर्म योनि कहलाती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मनुष्य योनि के व्यक्ति को ही कर्म करने का अधिकार प्राप्त है। बाकी जितनी भी योनियां होती हैं, उन्हें असल में मनुष्य योनि में किए गए कर्मों का फल माना जाता है।

अब यह बात भी समझ लीजिए। देखिए, उच्च योनि असल में देव योनि है। यह किसी इंसान को तब मिलती है जब उसने अच्छे कर्म किए होते हैं। मध्यम योनि मनुष्य योनि है। इस योनि में मनुष्य केवल कार्य करता है और उसके द्वारा किए गए कार्यों का फल उसे मिलता है। तीसरी होती है निम्न योनि। इसमें निम्न कोटि के जीवों को जन्म मिलता है। अगर किसी इंसान ने अच्छे कर्म नहीं किए होते, तो वह निम्न योनि में जन्म लेता है।

अब भगवान बताते हैं कि जीवन भर इंसान जिस प्रकार के भी कर्म करता है, उसी प्रकार के संस्कार उसकी आत्मा पर अंकित हो जाते हैं। जब इंसान मर जाता है, तो उसकी आत्मा अपने पिछले जन्म में किए गए कर्मों और

संस्कारों के हिसाब से ही काम करती है। आपने भी देखा होगा कि कुछ लोग बचपन से ही बहुत अच्छे होते हैं और कुछ लोग बचपन से ही बुरे होते हैं। कुछ लोगों का एक खास काम करने में ही मन लगता है और कुछ लोगों का किसी और काम में। यह सब पूर्व जन्मों के संस्कारों के हिसाब से होता है।

इसीलिए कहा जाता है कि कोई भी इंसान अपना मूल स्वभाव नहीं बदल सकता। यानी अगर किसी व्यक्ति को बुरे कर्म करने में मजा आता है और वह सभी अच्छी बातें समझकर अच्छे कर्म करने भी लग जाए और जीवन भर अच्छे कर्म ही करता रहे, तो भी उसका मूल स्वभाव नहीं बदलेगा। उसे बुरे कर्म करने में ही मजा आएगा। यही बात है।

अब भगवान आगे कहते हैं कि यह जो जीवात्मा है, इसी के माध्यम से कान, आंख, त्वचा, रचना और नासिका के द्वारा मैं ही सभी चीजों का उपभोग करता हूं। मैं ही सूरज के रूप में चमकता हूं। मैं ही वर्षा बनाकर बरसाता हूं। मैं ही फसलों को उगाता हूं। यानी मैं ही अन्न उगाता हूं। और जब तुम उस अन्न को खाते हो, तो उस अन्न को मैं ही खाता हूं और मैं ही पचाता हूं।

जीवात्मा के रूप में, मैं ही सभी प्राणियों में स्थित हूं। मेरी उपस्थिति के कारण ही इंसानों के अंदर स्मृति और ज्ञान होता है। मेरे ही कारण से प्राणी में तर्क शक्ति और विश्लेषण शक्ति होती है। देखिए, एक इंसान का जो व्यक्तित्व होता है, वह इन चार चीजों से ही तो बनता है—स्मृति, ज्ञान, तर्क शक्ति और विश्लेषण शक्ति। अगर यह चारों चीजें निकाल दी जाएं, तो इंसान केवल शरीर ही रह जाएगा। यानी वह चीज जो इंसान को इंसान बनाती है, भगवान

कह रहे हैं कि वह मैं हूं। भगवान यह भी कहते हैं कि सूरज के रूप में मैं ही अन्न उगाता हूं और तुम्हारे द्वारा जो खाना खाया जाता है, उसे मैं ही पचाता हूं। यानी सब कुछ मेरा है।

और इसीलिए, हे अर्जुन, तू सब कुछ मुझे अर्पित करने की भावना से कर। इतना जान लेने के बाद अर्जुन, फिर कुछ भी जानने योग्य विशेष नहीं रह जाता।

यही गीता के १५वें अध्याय का सार है।

अध्याय १६: देवासुर सम्पद विभाग योग

यह गीता का **१६**वां अध्याय है और इसे देवासुर संपद विभाग योग कहा गया है। देखिए, दो प्रकार की संपत्ति तो हम जानते हैं—चल संपत्ति और अचल संपत्ति। पर इन दोनों का इस्तेमाल तभी तक होता है, जब तक कोई इंसान जिंदा रहता है। और जैसे ही इंसान मर जाता है, उसकी चल-अचल संपत्ति यहीं पर छूट जाती है।

अब भगवान ने बताया है कि जब आदमी मर जाता है, तब भी उसके साथ दो प्रकार की संपत्तियां जाती हैं—एक है दैवी संपत्ति और दूसरी है आसुरी संपत्ति। 16वें अध्याय में भगवान ने यह बताया है कि जिस व्यक्ति के पास दैवी संपत्ति होती है, उसमें क्या गुण होते हैं, और वह व्यक्ति जिसके पास आसुरी संपत्ति होती है, उसमें क्या गुण होते हैं।

भगवान बताते हैं कि, हे अर्जुन! निर्भयता, अंतःकरण की शुद्धता, ज्ञान प्राप्त करने के लिए एकाग्रता, दानवीरता, इंद्रियों का संयम, यज्ञ की भावना, अच्छे विचारों का पढ़ना और उनका मनन करना, अच्छे कार्यों को करने के लिए कष्ट सहने की तैयारी, कथनी और करनी में भेद न रखना, सत्य, अहिंसा,

क्रोध न करना, त्याग की भावना, मानसिक शांति, निंदा नहीं करने की प्रवृत्ति, सभी प्राणियों के लिए दया भाव, व्यवहार में कोमलता, बुरे कार्य करने में संकोच का अनुभव करना, चंचलता न होना, तेजस्विता, क्षमाशीलता, धीरता, पवित्रता, द्वेष न होना, और अहंकार न होना—ये सभी गुण दैवी संपत्ति से युक्त व्यक्ति के अंदर होते हैं।

अब भगवान ने यह बताया है कि जो दैवी संपत्ति होती है, वह इंसान को मुक्ति दिलाती है। परंतु जो आसुरी संपत्ति होती है, उसकी वजह से इंसान बार-बार जन्म लेता है और निम्न योनियों में जन्म लेता है।

अब भगवान बताते हैं कि जिनकी आसुरी संपत्ति बढ़ती जाती है, उनके क्या गुण होते हैं और उन्हें कैसे पहचाना जा सकता है। देखिए, आसुरी स्वभाव के व्यक्ति को यह नहीं पता होता कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। उनमें पवित्रता नहीं होती, उनका आचरण अच्छा नहीं होता। वे झूठ बोलते हैं, किसी भी ईश्वर को नहीं मानते। वे समझते हैं कि केवल अपनी इच्छाएं पूरी करना ही जीवन का उद्देश्य है। वे क्रूर होते हैं, किसी का भी एहसान नहीं मानते, और असल में तो संसार का नाश करने के लिए ही पैदा होते हैं। वे ढोंगी होते हैं, अभिमान के नशे में चूर रहते हैं। उनकी कामनाएं कभी पूरी नहीं होतीं। चाहे उन्हें कितना भी मिल जाए, वे कभी संतुष्ट नहीं होते। उनकी इच्छाएं और कामनाएं असीम होती हैं। वे भोग-विलास को जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मानते हैं, और उसके लिए गलत कार्य करने से भी नहीं हिचकते। उनकी विचारधारा कुछ इस प्रकार होती है: "इतना मिल गया,

अब इतना और ले लूंगा। इतने लोगों को मार दिया, और मार डालूंगा, तो उनके हिस्से का भी मेरे पास आ जाएगा।"

यदि वे यज्ञ करते हैं या दान देते हैं, तो केवल दिखावे के लिए करते हैं, यह दिखाने के लिए कि वे कितने ऊंचे, महान और बलवान हैं।

इन लोगों का सबसे बड़ा दुर्गुण यह होता है कि वे सबकी बुराई करते हैं। बुराई में इतने लीन होते हैं कि उनकी स्वयं की भी बुराई की जाती है। हे अर्जुन! ऐसे लोगों को मैं बार-बार नीच योनि में डालता हूं।

अब भगवान ने आगे बताया कि काम, क्रोध और लोभ—ये तीन नरक के द्वार हैं। ये तीनों आत्मा को नीचे की ओर ले जाते हैं। यहां काम का अर्थ केवल सेक्स नहीं है। काम का असल मतलब है कामना। जब किसी चीज की कामना करते हो, तो लोभ बढ़ता है। जितनी कामनाएं पूरी होती जाती हैं, उतनी ज्यादा कामनाएं बढ़ती चली जाती हैं। और जिस इंसान का लोभ बढ़ता चला जा रहा है, उसे मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकता है? मोक्ष तो छोड़ो, उसे शांति भी नहीं मिल सकती।

इसलिए, हे अर्जुन! जो इन तीनों से मुक्त रहता है, यानी काम, क्रोध और लोभ से मुक्त रहता है, वह इंसान उत्तम गति को प्राप्त करता है।

इसीलिए, इंसान को हर प्रकार से यह प्रयास करना चाहिए कि उसकी दैवी संपत्ति बढ़ती जाए, और आसुरी संपत्तियां धीरे-धीरे कम होती चली जाएं।

भगवान ने यह भी कहा है कि जितने भी दैवी गुण मैंने बताए हैं, जरूरी नहीं है कि ये सारे गुण तुममें हों। परंतु यदि इनमें से अधिकतर गुण भी तुममें हैं, तो तुम्हें मुक्ति मिल जाएगी।

अब भगवान ने अंत में कहा कि, हे अर्जुन! यदि कभी संशय हो कि क्या करना उचित है और क्या अनुचित है, क्या करने से दैवी संपत्ति बढ़ेगी और क्या करने से आसुरी संपत्ति बढ़ेगी, तो हमेशा शास्त्र की शरण लो। जो कुछ भी शास्त्रों में लिखा है, उसे मानो और उसके अनुसार काम करो। यदि तुम शास्त्रों के अनुसार कार्य करोगे, तो निश्चित ही तुम्हें मोक्ष मिल जाएगा।

और यही १६वें अध्याय का सार है।

अध्याय १७: श्रद्धात्रय विभाग योग

देखिए, यह गीता का **१७**वां अध्याय है, और इसे श्रद्धात्रय विभाग योग कहते हैं। अब देखिए, पिछले अध्याय के आखिरी श्लोक में भगवान अर्जुन से कहते हैं कि जब भी संशय की स्थिति हो, जब भी समझ में नहीं आए कि क्या करना उचित है और क्या करना अनुचित है, तब हमेशा शास्त्रों को प्रमाण मानना चाहिए।

अब इस 17वें अध्याय में अर्जुन भगवान से पूछते हैं कि जो व्यक्ति शास्त्र विधि को छोड़कर यज्ञ या पूजन करता है, उसकी क्या गति होती है? अब भगवान बताते हैं कि देखो, तीन गुण होते हैं मनुष्यों के अंदर - सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। और जिस प्रकार का व्यक्ति होता है, उसकी उसी प्रकार की श्रद्धा होती है। यानी सतोगुणी की सतोगुणी श्रद्धा होती है, रजोगुणी व्यक्ति की रजोगुणी श्रद्धा होती है, और तमोगुणी व्यक्ति की तमोगुणी श्रद्धा होती है।

जो व्यक्ति यह मानकर यज्ञ करता है कि यह उसका कर्तव्य है और उसके फल की इच्छा नहीं करता है, उसका यज्ञ सात्त्विक होता है। इसे सात्त्विक यज्ञ

कहते हैं। जो व्यक्ति यज्ञ इसलिए करता है कि फल की प्राप्ति होगी, वह व्यक्ति रजोगुणी है, उसमें रजोगुणी श्रद्धा है, और उसका यज्ञ रजोगुणी है।

तीसरा और आखिरी, जो व्यक्ति जब यज्ञ करता है तो वह शास्त्र विधि का पालन नहीं करता, सही प्रकार से दान या पुण्य नहीं करता, और यज्ञ करते समय करने वाले के मन में श्रद्धा नहीं होती, इस तरह के व्यक्ति को तमोगुणी कहते हैं। उसमें तमोगुण श्रद्धा होती है और जो उसका यज्ञ है, वह तामसिक यज्ञ है। यानी उसका यज्ञ जो है, वह तमोगुण है।

अब यह तो हो गई यज्ञ की बात। भगवान ने बताया है कि तप कैसे करना चाहिए और वह किस प्रकार का होता है। अब भगवान बताते हैं कि तप का मतलब होता है शुद्धि करना यानी साफ करना। और जो शुद्धि है, वह तीन स्तर पर होती है। यह तीन स्तर हैं - मन, वचन और कर्म।

मन का तप: मन में प्रसन्नता रखना, शांति अनुभव करना, मनन करना, चिंतन करना, संयमपूर्वक रहना और विचारों की पवित्रता रखना, यह मानसिक तप कहलाता है। ऐसा करने से मन का तप सिद्ध होता है।

वचन का तप: ऐसी वाणी बोलना जो किसी को भी व्याकुल न करे। सत्य बोलने पर सत्य भी ऐसा बोलना जो प्रिय हो और हितकारी हो। अच्छे विचारों को कहना और इस तरह की वाणी बोलनी जिससे किसी को भी दुख न पहुंचे, इसे वचनों का तप कहते हैं।

कर्म का तप: सभी पूजनीय व्यक्तियों, जैसे देवता, ब्रह्म, गुरु और ज्ञानी जनों का पूजन करना, पवित्रता पूर्वक कार्य करना, कार्यों में सरलता रखना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और अहिंसा का पालन करना, यह सब कर्म से संबंधित तप कहलाते हैं।

अब अगर यह तीनों प्रकार के तप - यानी मन, वचन और कर्म के तप - श्रद्धापूर्वक, बिना किसी फल की इच्छा के किए जाते हैं, तो उसे सात्त्विक तप कहते हैं। अगर यह सारे तप किसी इच्छा से किए जाते हैं, तो यह राजसिक तप कहलाते हैं।

अब इसका मतलब समझ लीजिए। मान लीजिए कि क्रोध नहीं करना बोला गया है। पर अगर इसलिए गुस्सा नहीं कर रहे हैं कि कहीं हमारा जो बॉस है, वह गुस्सा न हो जाए, या मीठा इसलिए बोलना है ताकि हमारा कुछ काम निकल जाए, या अहिंसा का पालन इसलिए कर रहे हैं क्योंकि सामने वाला हमसे ज्यादा ताकतवर है और वह हमें नुकसान पहुंचा सकता है, तो यह सब राजसिक तप कहलाएगा।

और जब यह तीनों प्रकार के तप इसलिए किए जा रहे हैं ताकि किसी को नुकसान पहुंचाया जा सके, या किसी से मीठा बोल रहे हैं ताकि बाद में उसे धोखा दे सकें, तो यह तामसिक तप में आ जाएगा।

अब इस बात को समझ लीजिए कि राजसिक तप और तामसिक तप में, चीज तो एक जैसी की जा रही है, पर भावना कैसी है, इससे फर्क पड़ रहा है। सात्त्विक तप इसलिए किया जा रहा है कि यह हमारा कर्तव्य है। राजसिक तप इसलिए किया जा रहा है कि हमें किसी से कुछ मतलब निकालना है। और तामसिक तप इसलिए किया जा रहा है ताकि हम सामने वाले को नुकसान पहुंचा सकें।

जैसा कि भगवान ने कहा है, जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, उसे उसी प्रकार की गति मिलती है। यही बात दान के विषय में भी लागू होती है।

जो भी दान कर्तव्य भावना से दिया जाता है, उसे सात्त्विक दान कहते हैं।

जिस दान को इसलिए किया जाता है ताकि बदले में कुछ मिले, अभी नहीं तो बाद में मिले, उसे राजसिक दान कहते हैं।

वह दान जो देश, काल का विचार किए बिना कुपात्रों को दिया जाता है और दान देते समय देने वाले के दिल में तिरस्कार की भावना होती है, उसे तामसिक दान कहते हैं।

अब दान का कॉन्सेप्ट समझ लीजिए।

सात्त्विक दान: कोई आदमी दान दे रहा है और कर्तव्य समझकर दान दे रहा है। उसके पीछे की भावना यह है कि "मैं इतना लायक हो गया हूं, और मुझे

इस लायक तक बनाने के लिए मेरे माता-पिता ही नहीं, बल्कि समाज के प्रत्येक वर्ग का कुछ न कुछ योगदान रहा है। तो मेरा यह फर्ज बनता है कि मैं अब समाज को लौटाऊं।" सात्त्विक दान का मतलब यह है कि व्यक्ति माता-पिता ही नहीं, पूरे समाज के लिए खड़ा है और पूरे समाज के कल्याण की भावना रखता है।

राजसिक दान: इसमें व्यक्ति सोचता है, "माता-पिता ने किया, इसलिए माता-पिता का करूंगा, लेकिन समाज का कुछ नहीं करूंगा। समाज ने मेरे लिए जो कुछ भी किया, उसके बदले मेरे माता-पिता ने पैसे दिए, तो मैं समाज के लिए क्यों करूं?"

तामसिक दान: दान उस व्यक्ति को दिया जाना चाहिए, जिसे वाकई में उसकी जरूरत है। लेकिन अगर आप यह सोचकर दान कर रहे हैं कि "ये रोटियां तो खराब हो रही हैं, इन्हें फेंकने से अच्छा है किसी भिखारी को दे दें। भले ही उस चीज को खाने के बाद सामने वाले का पेट खराब हो जाए," तो यह तामसिक दान है।

भगवान बताते हैं कि यज्ञ, तप और दान करते समय किस प्रकार की भावना रखी जानी चाहिए ताकि वह सत्कार्य कहलाए। और किस प्रकार की भावना नहीं रखनी चाहिए ताकि वह असत न कहलाए। और यह भी कि जब भी यज्ञ, तप या दान किया जाए, हमेशा और हमेशा केवल कर्तव्य की भावना से

ही किया जाए। अगर उसके बदले में आप कुछ भी पाने की इच्छा रखते हैं, तो वह राजसिक या तामसिक की श्रेणी में आ जाएगा।

और यही १७वां अध्याय का सार है।

अध्याय १८: मोक्षसन्यासयोग

देखिए, यह गीता का **१८** वां अध्याय है और इसे मोक्षसंन्यासयोग कहा गया है। अब अर्जुन भगवान से पूछता है कि त्याग और संन्यास में क्या अंतर है। भगवान बताते हैं कि कुछ लोगों के हिसाब से किसी भी इच्छा की पूर्ति के लिए किए जाने वाले कर्म का त्याग संन्यास है और कुछ लोगों के हिसाब से कर्मों के फल का त्याग संन्यास है।

अब जो लोग कर्मों का ही त्याग करने को कह रहे हैं, वे इसलिए कह रहे हैं कि कोई भी कर्म करो, अच्छा या बुरा, उसके फल को भोगने के लिए दोबारा जन्म लेना पड़ेगा। इसलिए अच्छा यह रहेगा कि कर्म करना ही छोड़ दिया जाए। इसका मतलब यह है कि अगर आप अच्छे कर्म भी करते हो, तो भी उसमें कुछ न कुछ बुरा जरूर होता है और यह भी कि कितना भी बुरा कर्म क्यों न करो, उसमें कुछ न कुछ अच्छा जरूर होता है।

इसका एक उदाहरण समझ लीजिए। जैसे कोई आदमी खेती कर रहा है। उससे जो भी अनाज पैदा होगा, उससे हजारों-लाखों लोगों की भूख मिटेगी। पर यह भी सही है कि जब आप हल चलाओगे तो बहुत सारे जीव, सूक्ष्म

जीव, मारे जाएंगे। यानी एक तरफ जहां हजारों-लाखों लोगों की भूख मिटेगी, वहीं यह भी है कि हजारों-लाखों बल्कि करोड़ों सूक्ष्म जीव मारे जाएंगे। यानी कर्म तो अच्छा है, पर इसमें भी बुरा हो रहा है।

तो कुछ लोगों ने ऐसा मानना शुरू किया कि अगर कर्म किया ही न जाए तो न पाप होगा, न पुण्य होगा और उसकी वजह से दोबारा जन्म नहीं लेना पड़ेगा। पर भगवान कृष्ण कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप यह त्याग करने के योग्य नहीं हैं। यानी इन्हें तो करना ही चाहिए क्योंकि कर्म करने से ही पवित्रता प्राप्त होती है। पर जब भी यज्ञ, दान और तप करो, तो इसके फल की आसक्ति का त्याग कर दो। तो वह सर्वश्रेष्ठ है।

अब भगवान ने तीन प्रकार के त्याग बताए हैं:

1. सात्विक त्याग - जिसमें फल की इच्छा को त्याग दिया जाता है।

2. राजसिक त्याग - जिसमें व्यक्ति कर्मों का त्याग इसलिए कर देता है क्योंकि कुछ भी करेगा, उसमें पाप भी होगा और पुण्य भी। इसलिए वह कर्म ही नहीं करता।

3. तामसिक त्याग - जिसमें व्यक्ति कर्तव्य कर्मों का ही त्याग कर देता है।

भगवान कहते हैं कि जो व्यक्ति कर्मों के फल का ही त्याग कर देता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है क्योंकि उसे उस कर्म का पुण्य भी नहीं चाहिए होता और पाप भी नहीं चाहिए होता।अब यह तो हुई एक चीज।

दूसरी चीज जो भगवान ने बताई है कि कोई भी कर्म पांच चीजों पर टिका होता है। यानी पांच स्तंभ बताए हैं। बिना इनके कर्म की सिद्धि नहीं होती। यानी जो कर्म करना चाह रहे थे वह नहीं हो पाता।

1. **पहली चीज** - शरीर, जिससे कर्म किया जाता है।
2. **दूसरा स्तंभ** - आत्मा, जिसे करता कहते हैं।
3. **तीसरा स्तंभ** - इंद्रियां, जिन्हें कारण कहा गया है।
4. **चौथा स्तंभ** - इंद्रियों की क्रियाएं, जिन्हें चेष्टा कहा गया है।
5. **पांचवां कारण** - भाग्य, जिसे दैवीय कहा गया है।

अब इस चीज का जरा सा **उदाहरण** समझ लीजिए। मान लेते हैं कि आप IAS ऑफिसर बनना चाहते हो। तैयारी कैसे करोगे? आप अपने शरीर से तैयारी करोगे।

क्यों करोगे? क्योंकि आत्मा यानी कि आप स्वयं चाहते हो IAS ऑफिसर बनना।

तैयारी किसके द्वारा करोगे? अपनी इंद्रियों से। आंखों से पढ़ोगे, कानों से सुनोगे और हाथों से एग्जाम में लिखकर आओगे। यह कारण हो गए।

अब जब आप पढ़ाई कर रहे होंगे, तो आपका ध्यान भटकेगा। आप कहोगे, "चलो यह पिक्चर देख लेते हैं," या "यह गाना सुन लेते हैं," या "यह चीज खा लेते हैं।" इंद्रियों की खुद की इच्छाएं होती हैं, जिन्हें चेष्टा कहते हैं।

यानी आपकी आत्मा ने आपसे कहा कि IAS का एग्जाम निकालना चाहिए और आपने अपने शरीर का उपयोग किया, एग्जाम की तैयारी करने के लिए। आपने आंखों से पढ़ा, कानों से सुना, हाथों से लिखा और जो चेष्टाएं थीं, इंद्रियों की, उनसे अपने आपको दूर रखा।

पांचवां कारण जिसे बताया गया है - भाग्य। जिसे दैवीय भी कहा गया है। हो सकता है कि इतनी तैयारी करने के बाद भी आपका सिलेक्शन न हो। ऐसा हो सकता है कि बहुत सारे लोगों ने बहुत ज्यादा अच्छी तैयारी की हो और उनका सिलेक्शन हो गया हो।

यानी कोई भी कर्म जब सिद्ध होता है, तो उसके अंदर ये पांचों चीजें होती हैं। तभी वह कर्म सिद्ध होता है और पांचों चीजें जब अनुकूल होती हैं, तभी वह कर्म सिद्ध होता है। नहीं तो नहीं हो पाता।

अब भगवान अर्जुन से कहते हैं कि अगर यह चीज तुझे समझ में आ जाए तो यह भी समझ जाएगा कि कोई भी कर्म तू खुद नहीं करता। वह कर्म मैं ही करवाता हूं। इसलिए स्वयं से कर्तापन का जो अहंकार है, उसको हटा दे। अब

जिस व्यक्ति में करता होने का अहंकार नहीं होता, उसकी बुद्धि कर्मफल में कभी भी लिप्त नहीं होती। वह व्यक्ति सब लोगों को मारकर भी हत्यारा नहीं होता और न ही कर्म के कारण किसी बंधन में फंसता है।

अब जरा सा इस चीज को समझ लीजिए। देखिए, भगवान जो हैं, वे सभी लोगों का पालन करते हैं और उन्हीं का संहार भी करते हैं। पर भगवान को इस चीज का, सभी लोगों को उत्पन्न करने और पालन-पोषण करने का न तो पुण्य मिलता है और न ही जब वे लोगों का संहार करते हैं, तो उन्हें पाप लगता है।

अब इस चीज को भी समझ लीजिए। क्योंकि भगवान पुण्य का फल नहीं लेते, इसलिए उन्हें पाप का भागी भी नहीं होना पड़ता। और यही भगवान कहते हैं कि कर्मबंधन से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है कि तू अपने आपको भगवान का उपकरण मान।

अब इस चीज का **एक उदाहरण और** समझ लीजिए। जैसे किसी जज ने अगर किसी कातिल को फांसी की सजा दी, तो वह जल्लाद, जो उस कातिल को फांसी पर चढ़ाएगा, वह हत्यारा नहीं कहलाएगा। उसे जीव हत्या का पाप नहीं लगेगा क्योंकि वह जल्लाद एक न्याय का उपकरण मात्र है। और इसी तरह भगवान ने समझाया है कि किस तरह से तुम्हें अपने आपको भगवान का उपकरण मानकर चलना है।

अब भगवान अर्जुन को तीन प्रकार के ज्ञान बताते हैं। अर्जुन, देखो, तीन तरह के ज्ञान होते हैं। जो व्यक्ति सभी प्राणियों में मुझे, यानी भगवान को देखता है, उसे मान लो कि उसके पास सात्विक ज्ञान है। जो व्यक्ति सोचता है कि अलग-अलग प्राणियों में अलग-अलग प्रकार की जीवात्मा है, उस तरह के ज्ञान को तू राजसिक ज्ञान समझ। और वह व्यक्ति जो आत्मा वगैरह को नहीं मानता, पर यही सोचता है कि शरीर ही सब कुछ है, उसका ज्ञान तामसिक है।

इसी तरह से भगवान ने तीन प्रकार के कर्म भी बताए हैं। वह सभी कर्म जिन्हें करते समय व्यक्ति के अंदर किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं होती, किसी भी प्रकार के फल की इच्छा नहीं होती, उन्हें सात्विक कर्म कहते हैं। जो कर्म इस प्रकार से किए जाते हैं कि इसके बदले में कुछ मिलेगा, वह राजसिक कर्म है। और वह कर्म, जिन्हें करते समय कर्ता अपनी शक्ति का विचार नहीं करता, उसके परिणाम के बारे में नहीं सोचता, यह नहीं देखता कि इसे करने से दूसरे को पीड़ा पहुंचेगी या नहीं, ऐसे कर्मों को तामसिक कर्म कहते हैं।

इसी तरह से तीन प्रकार के कर्ता भी बताए गए हैं। वह लोग जो कर्तापन की आसक्ति और कर्तापन के अहंकार से मुक्त हैं, जिनमें अपने कर्म के प्रति धैर्य और उत्साह तो है, पर अगर कर्म सफल होता है तो उन्हें खुशी नहीं होती और असफल होने पर उन्हें दुख नहीं होता, ऐसा कर्ता सात्विक है। दूसरे प्रकार के वे लोग जो भोग-विलास के लिए कर्म करते हैं, जो कोई भी कर्म

इसलिए करते हैं कि इसके बदले में कुछ मिलेगा, और जब उनका काम सफल हो जाएगा तो वे खुश होंगे और असफल होने पर दुखी होंगे, ऐसे कर्ता राजसिक हैं। तीसरे प्रकार के वे लोग जो जब काम करते हैं तो उनमें कोई एकाग्रता नहीं होती, सही तरीके से काम नहीं करते, फुहरपन और कपट से काम करते हैं, दूसरे के काम में बाधा डालते हैं, आलसी होते हैं, और जिनका काम असल में नुकसान पहुंचाने के लिए किया जाता है, ऐसे कर्ता तामसिक कर्ता कहलाते हैं।

इसी तरह से भगवान ने तीन प्रकार की बुद्धि भी बताई है। वह बुद्धि जो ठीक-ठाक निर्णय करती है कि क्या उचित है और क्या अनुचित है, जो कर्तव्य और अकर्तव्य को भली-भांति समझती है, वह सात्विक बुद्धि है। दूसरी प्रकार की बुद्धि, जिसके अंदर व्यक्ति को धर्म-अधर्म और कर्तव्य-अकर्तव्य की सही वास्तविकता नहीं मालूम होती, उसे राजसिक बुद्धि कहते हैं। और तीसरी प्रकार की बुद्धि, जो अज्ञान से ढकी हुई होती है, अधर्म को ही धर्म मानती है, और हर बात का उल्टा मतलब निकालती है, उसे तामसिक बुद्धि कहते हैं।

इसी तरह से तीन प्रकार की धीरता भी भगवान ने बताई है। धीरता यानी धारण शक्ति। ऐसी धीरता जो मन, प्राण, और इंद्रियों को भटकने नहीं देती और ध्यान के द्वारा सभी चीजों को स्वयं में स्थिर करती है, ऐसी धीरता को सात्विक धीरता कहा गया है। दूसरी प्रकार की धीरता वह है, जिसमें व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष के फलों से चिपका रहता है, इसे

राजसिक धीरता कहा गया है। और तीसरी प्रकार की धीरता वह है, जिसके द्वारा व्यक्ति निद्रा, भय, शोक, निराशा, दुख, और उद्दंडता को नहीं छोड़ता। यह धीरता तामसिक धीरता कही जाती है।

इसी प्रकार भगवान ने तीन प्रकार के सुख भी बताए हैं। जिस प्रकार के ध्यान से मनुष्य जिस असीम सुख में डूब जाता है, जिससे सभी प्रकार के दुखों का नाश होता है, वह सुख जो शुरुआत में तो विष जैसा कड़वा लगता है, पर जिसके परिणाम अमृत जैसे मीठे होते हैं, वह सुख जो आत्म तत्व को समझ लेने से प्राप्त होता है, वह सुख सात्विक है। दूसरे प्रकार का सुख वह, जो इंद्रियों से मिलता है और विषयों का भोग करने से मिलता है, जो शुरुआत में तो अमृत के समान मीठा लगता है, पर बाद में विष के समान कड़वा हो जाता है, उसे राजसिक सुख कहा गया है। और तीसरे प्रकार का सुख जो बताया है भगवान ने, यह वह सुख है जो शुरू से लेकर आखिरी तक आदमी को भ्रम में डाले रखता है। यह सुख निद्रा, आलस्य, और नशे के कारण प्राप्त होता है। यह शुरू से लेकर आखिरी तक दुख ही दुख देता है। पर तामसिक बुद्धि वाले व्यक्ति के अंदर यह समझ नहीं होती कि वह उस चीज को समझ सके।

इसके बाद भगवान ने स्वभाव, वर्ण और धर्म के बारे में बताया है। भगवान कहते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चारों वर्णों के कर्मों का विभाजन उनके गुणों के अनुसार तय किया गया है। अब यह जो चारों वर्ण हैं, ये समाज के आवश्यक अंग हैं। यानी इनमें से एक भी अंग हट जाए,

तो पूरा समाज गिर जाएगा। और भगवान ने कहा है कि तप, संयम और ज्ञानार्जन करके अन्य वर्णों को शिक्षा प्रदान करना ब्राह्मणों द्वारा की जाने वाली पूजा है, जिसे मैं स्वीकार करता हूं। धर्म युद्ध करना क्षत्रियों द्वारा की जाने वाली पूजा है, जिसे मैं स्वीकार करता हूं। व्यापार करना और व्यापार में ईमानदारी बरतना यह वैश्यों द्वारा की जाने वाली पूजा है, जिसे मैं स्वीकार करता हूं। और शूद्र व्यक्ति का जो पूजन है, वह सेवा भाव में निहित है, जिसे मैं स्वीकार करता हूं। पर बजाय इसके, जो ब्राह्मण का कर्म है, वह वह नहीं करके, यानी सत्ताधारियों को या राजाओं को सही दिशा दिखाने की बजाय, अगर वह चापलूसी करने लग जाए, तो वह गलत है और वह पाप का भागी है। क्षत्रिय अगर अपने बल से दूसरे लोगों को दबाए, तो वह भी पाप का भागी है। वैश्य व्यक्ति अगर अपने पैसों से गलत व्यापार करने लगे, अपने काम में ईमानदारी नहीं रखे, तो यह एक पाप का भागी है। और शूद्र व्यक्ति यदि अपने कार्यों से विमुख हो जाए, तो यह एक पाप है। और अगर चारों वर्ण के लोग अपना काम सही तरह से नहीं करते, तो पूरे समाज की व्यवस्था जो है, वह भंग हो जाती है।

तो चारों वर्णों के व्यक्ति, जिनका जो भी स्वाभाविक कर्म है, वही उनका धर्म भी है। और परम सिद्धि प्राप्त करने के लिए, यानी कि मोक्ष प्राप्त करने के लिए, उन्हें अपना कार्य बहुत अच्छे से और बहुत ईमानदारी से करना चाहिए। और जब भी वे अपना कर्तव्य करें, तो उसके फल की आसक्ति को

त्याग दें। यानी उसके फल की इच्छा न करें। बस उसे केवल कर्तव्य भावना से करें। तो उन्हें निश्चित ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाएगी।

और इसीलिए, हे अर्जुन, सभी कर्मों को मुझे समर्पित कर और मुझमें एकाग्र हो जा। यदि अपने परिवार वालों के मोह के प्रति, यानी अपने परिवार वालों के मोह की वजह से, अगर तू अपना कर्तव्य नहीं निभाएगा, तो तुझे अभी तो शांति मिल जाएगी, पर क्योंकि तेरा धर्म जो है, तेरा जो मूल स्वभाव है, जो युद्ध करना है, तो तू बाद में जरूर पछताएगा।

इस प्रकार, हे अर्जुन, यह दुनिया का जो सबसे गोपनीय ज्ञान था, वह मैंने तुझे दे दिया। इस पर तू बहुत ध्यान से सोच, और अपना विवेक और अपनी बुद्धि का प्रयोग कर, और जो तुझे योग्य लगे, वह कर

और इसके बाद अर्जुन, जो है, वह युद्ध के लिए अपनी कमर कस लेता है।

इसके बाद भगवान एक चीज और बोलते हैं कि देखो अर्जुन, जिस व्यक्ति में तप करने की क्षमता नहीं है, जिसमें भक्ति भाव नहीं है, जिसमें ज्ञान को सुनने की इच्छा नहीं है, उसे यह ज्ञान कभी भी मत देना। सुपात्र को ढूंढना, और वह व्यक्ति जो मुझमें भक्ति रखता है, उसी के सामने इस सर्वोच्च रहस्य को प्रकट करना। क्योंकि गीता ज्ञान को बताने वाला इस पृथ्वी पर मेरा सबसे अधिक प्रिय पात्र है। और जो भी व्यक्ति गीता का ज्ञान फैलाएगा, वह हमेशा मेरा प्रिय रहेगा।

जो भी व्यक्ति मेरे इस धर्म संवाद का अध्ययन और मनन करेगा, वह सभी प्रकार के कर्मों के फलों से मुक्त हो जाएगा और मुझमें आकर समा जाएगा।

अब आखिरी चीज जो संजय ने धृतराष्ट्र से कही है, वह यह है कि महाराज धृतराष्ट्र, जहां योगेश्वर कृष्ण हैं, जहां धनुर्धारी अर्जुन हैं, वहीं लक्ष्मी हैं, वहीं विजय है, वहीं वैभव है, और वहीं नीति है। यानी इसमें कोई संशय नहीं कि युद्ध तो पांडव ही जीतेंगे। ऐसा क्यों? क्योंकि भगवान कृष्ण स्वयं उनकी तरफ हैं।

इसके साथ गीता का 18वां और आखिरी अध्याय समाप्त होता है।

आपने मुझे इतना समय दिया, थैंक्यू वेरी मच।

~पुनीत बिसारिया

~विस्तृत विश्लेषण

देखिए मैं आपको वह एक दोहा बताऊंगा जिसमें पूरी श्रीमद् भागवत गीता का सार है।

अब चलिए सबसे पहले तो आप गीता का सार समझ लीजिए, देखिए जब तक मनुष्य को धर्म और धर्म का ज्ञान नहीं होता तब–तक उसकी बुद्धि संशय में रहता है और चित्त विचलित रहता है; क्योंकि उसको यह समझ में नहीं आता कि उसको क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। पर जब मनुष्य को अपने धर्म का ज्ञान हो जाता है! तो फिर सफलता–असफलता, मान–अपमान, हार–जीत, निंदा और स्तुति इन सब का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता उसकी बुद्धि अस्थिर हो जाती है वह स्थित प्रज्ञा हो जाता है और वह अपने धर्म का पालन अपनी पूरी क्षमता और कौशल के साथ करने लगता है जिस से उसको योग की स्थिति प्राप्त होने लगती है। अब सवाल यह उठता है की धर्म क्या है! और जिसके लिए भगवान श्री कृष्ण कहते हैं; की

मनुष्य का धर्म यह है कि वह आत्म के यानी स्वयं के प्रयासों से, आत्मा को यानि स्वयं को ऊपर उठाए और कुछ भी कर के आत्म का यानी स्वयं का पतन नहीं होने दे, क्योंकि मनुष्य जो है वो स्वयं ही अपना सबसे बड़ा मित्र और स्वयं ही अपना सबसे बड़ा शत्रु होता है। और इसके लिए की मनुष्य को ये चाहिए कि वो अपने सभी सांसारिक धर्मों का निर्वहन करते हुए! यानी पूरी दुनियादारी करते हुए भी अपने आप को अकेला मानकर चले और एक योगी की तरह अपने धर्म के अनुसार अपने कर्मों का निर्वहन अपनी पूरी योग्यता और अपनी पूरी क्षमता के साथ निर्वहन करते रहने की कोशिश करता रहे, और केवल इतना ही करते रहने से उसकी योग्यता, उसकी क्षमता, और उसके कर्मों का परिणाम अपने आप ही बेहतर होता चला जाता है। ऐसा करने के लिए मनुष्य को ये चाहिए, कि उसके धर्म के अनुसार जो भी उसका कर्म है! उसको अपनी पूरी योग्यता, और अपनी पूरी क्षमता के साथ करे और उसके फल को ईश्वर को अर्पित कर दे। अब... देखिए जो भी व्यक्ति अपने कर्म को इस हिसाब से करता है, कि इसका जो भी परिणाम होगा! मैं उसको ईश्वर को अर्पित कर दूंगा; तो फिर इस तरह का व्यक्ति हार और जीत को, सुख और दुख को, प्रिय और अप्रिय को, मान और अपमान को, मित्र और शत्रु को, और अपनो और परायों को समान भाव से ग्रहण करने लगता है। और ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि वह अपने कर्म को कर्तव्य भाव से करता है और उस कर्म के फल का त्याग! कर्म को शुरू करने से पहले ही कर चुका होता है और इस तरह का मनुष्य जो होता है, वह अपने कर्म को एकदम निर्लिप्त और निष्काम भावना के साथ कर पता है। और इसी की

वजह से, उसका अहंकार और मोह! समाप्त हो जाता है और वह धीरे-धीरे परम तत्व को प्राप्त कर लेता है; यानी स्वयं ही भगवान बन जाता है|

अब... चलिए इस इस चीज को जरा सा एग्जांपल से समझ कर देख लीजिए, मान लेते हैं आप एक स्टूडेंट है, तो फिर आपका धर्म हो गया स्टडी करना अब जब तक आप पढ़ाई करना शुरू नहीं कर देते! तब तक आपको मालूम ही नहीं चल सकता! की क्या पढ़ना है और कैसे पढ़ना है। पर अगर आप अपनी पूरी योग्यता, और पूरी क्षमता के साथ पढ़ाई करें! तो केवल ऐसा करते रहने से आपकी योग्यता और क्षमता और भी बढ़ती चली जाएगी और न केवल आपके बहुत अच्छे नंबर आ सकते हैं! बल्कि टॉप भी कर सकते हैं। अब यहां पर आकर एक सवाल यह खड़ा होता है; कि ऐसा भी तो हो सकता है! की जिस दिन एग्जाम हैं उस दिन कुछ परेशानी खड़ी हो जाए और उस दिन आप एग्जाम्स नहीं दे पाएं; और पूरी योग्यता और क्षमता के साथ मेहनत करने के बाद आप फेल हो जाएं।

अब यहां पर आकर गीता की असली टीचिंग शुरू होती है....

और वो ये है!

आप जो हो कभी भी एग्जाम्स में अच्छे नंबर लाने के लिए या टॉप करने के लिए पढ़ाई मत करो; आप पढ़ाई इस लिए करो क्योंकि पढ़ाई करना आपका धर्म है, और इसीलिए आप केवल पढ़ाई करने के लिए पढ़ाई करो। देखिए

मेहनत करने की सबसे बड़ी खासियत यह होती है की मेहनत जो होती है! वह कभी बेकार नहीं जाती। और इसीलिए अभी न सही आगे जीवन में, आपको अपनी पूरी योग्यता और पूरी क्षमता के साथ पढ़ाई करने का फायदा जरूर मिलेगा; और गीता जो है इस बात की गारंटी देती है।

दोहा भी देख लीजिए:

धर्म अधर्म के भेद का,

कर्म यज्ञ उपचार।

स्वयं को उसको सौंप दे,

यही हरि गीता सार।।

जय श्री कृष्ण